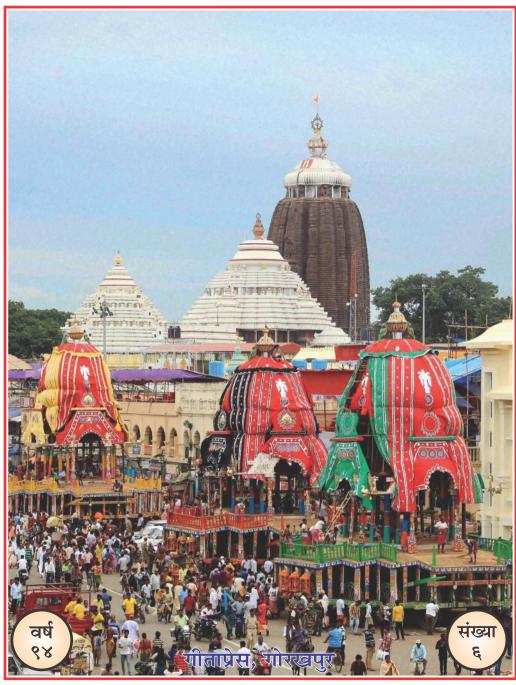
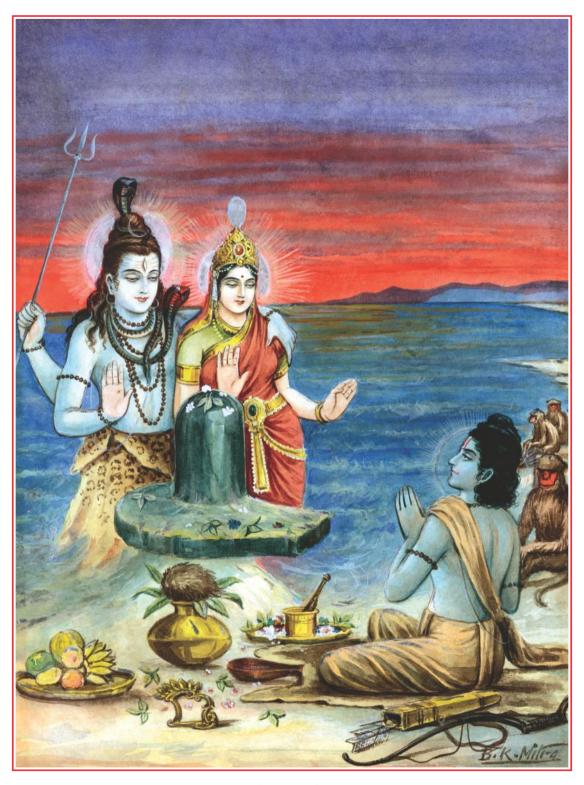
कल्याण



पुरीधाममें श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्रा





भगवान् श्रीरामद्वारा रामेश्वर-पूजन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा। दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष १४

गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, जून २०२० ई०

E

संख्या

पूर्ण संख्या ११२३

भगवान् श्रीरामद्वारा रामेश्वर-पूजन

लिंग पुजा। सिव समान प्रिय मोहि न दुजा॥ थापि बिधिवत करि कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि सिव द्रोही भगत पावा॥ भगति मोरी। सो नारकी संकर बिमुख चह मूढ़ मति थोरी ॥ संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास। ते नर करिंहं कलप भिर घोर नरक महुँ बास॥

जे रामेस्वर दरसन् करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥ साजुज्य पाइहि॥ जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो मुक्ति नर छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि होइ संकर देइहि॥

मम कृत सेतु जो दरसनु करिही।सो बिनु श्रम भवसागर तरिही॥

[श्रीरामचरितमानस]

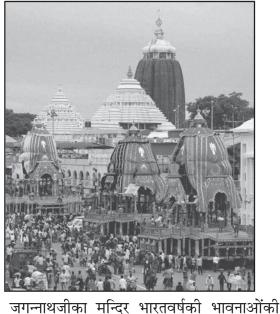
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ (संस्करण २,००,०००)	
कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, जून २०२० ई०	
विषय	-सूची
विषय पृष्ठ-संख्या	विषय पृष्ठ-संख्या
१ - भगवान् श्रीरामद्वारा रामेश्वर-पूजन	१६ - संकीर्तनसे रोगमुक्ति (वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी) ३२ १७ - संकीर्तनकी महिमा ३३ १८ - दोष कैसे दूर हों ? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ३४ १९ - सन्त श्रीमुण्डिया स्वामी [संत-चरित] (श्रीरतिभाईजी पुरोहित) ३७ २० - शुद्धिका अर्थ [स्वामी श्रीजगदेवानन्दजी] ३९ २१ - गोसेवाके फलस्वरूप प्राण-रक्षा [गो-चिन्तन] (गोकलचंद कासट) ४० २२ - साधनोपयोगी पत्र ४१ पति ही स्त्रीका गुरु है ४१ २३ - व्रतोत्सव-पर्व [आषाढ़मासके व्रत-पर्व] ४३ २४ - कृपानुभूति [दैवी कृपाका आभास] ४४ २५ - पढ़ो, समझो और करो ४५ (१) अपरिचित रेलकर्मियोंकी सद्भावना ४५ (२) त्यागकी महिमा ४६
आवश्यक [प्रेरक प्रसंग] (डॉ० श्रीविश्वामित्रजी) २३ १४- जीवन्मुक्त महात्माके लक्षण (डॉ० श्री के०डी० शर्मा) २४ १५- महाराज विश्वामित्र—राजर्षिसे ब्रह्मार्षि (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) २७	२६ - मनन करने योग्य ४८ माता-पिताकी सेवा ही परम धर्म है
_ 3\	-सूची
एकवर्षीय शुल्क ₹२५० विदेशमें Air Mail विषिक USS	। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ । जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ । गौरीपति जय रमापते॥ इ. 50 (₹ 3,000) { Us Cheque Collection
संस्थापक — <mark>ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका</mark> आदिसम्पादक —ि नत्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक —राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़ केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन–कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित	
website : gitapress.org e-mail : kalya	n@gitapress.org & 09235400242 / 244
सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें। Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।	

संख्या ६] कल्याण याद रखो-जिसके हृदयमें सदा सत्य, न्याय, गुणोंका स्मरण करने लगो। भगवान्के तत्त्व-रहस्यका प्रेम, क्षमा, धैर्य, ईमानदारी, सन्तोष, शान्ति, त्याग और मनन तथा विचार आरम्भ कर दो। उनकी मधुर मनोहर आनन्दके शुभ विचार खेला करते हैं, उसका जीवन लीला-कथाओंका श्रवण, गायन, चिन्तन करने लगो। भी वैसा ही बन जाता है। इसलिये निरन्तर इस प्रकारके उनके अतुलनीय माधुरीसे परिपूर्ण परम सुन्दर सुधावर्षी शभ विचारोंका ही चिन्तन करो। मुनिमनमोहक स्वरूपके ध्यानका अभ्यास आरम्भ कर याद रखो-जबतक अशुभ विचार-मिथ्या, दो, फिर अशुभ विचार अपने-आप ही नष्ट हो जायँगे। अन्याय, द्वेष, क्रोध, असिहष्णुता, बेईमानी, लोभ, याद रखो-शुभको लानेके लिये भी अशुभका अशान्ति, भोगलालसा, विषाद आदि हृदयमें वर्तमान हैं, स्मरण मत करो। अशुभका स्मरण ही अशुभको जीवित और प्रतिष्ठित रखता है। तबतक मनुष्य कभी सुखी और पवित्र-जीवन नहीं हो सकता। अत: इनको हृदयसे निकाल दो। परंतु 'इन बुरे याद रखो — कल्याणमय भगवान् महान् अनन्त विचारोंको हृदयसे निकालना है' इस प्रकारसे भी इनका दिव्य गुणोंके भण्डार हैं। उनका एक-एक गुण इतना यदि बार-बार चिन्तन होगा तो ये हृदयसे निकलेंगे पवित्र, इतना विशाल, इतना मंगलमय, इतना प्रभावशाली नहीं, और भी प्रगाढ़ हो जायँगे। 'चौथका चाँद नहीं है कि उसका स्मरण तथा अनुशीलन आरम्भ हो देखना है' बार-बार इसका स्मरण करनेसे वह अवश्य जानेपर अपने-आप ही सद्विचार तथा सद्गुणोंके देखा जाता है। 'नहीं देखना है' यह बात यदि याद समृह आने लगेंगे। ही नहीं आती तो कोई भी चाँद नहीं देखता। इस याद रखो—सारा जगत् भगवान्से निकला है मकानमें रातको भूत आता है, ऐसी बात बार-बार याद और इसमें सर्वत्र केवल भगवान् ही भरे हैं। भगवान् रहनेपर बिना हुए भी भूतका डर लगने लगता है। सर्वथा कल्याणमय-सद्गुणसमुद्र हैं। अतः जगत्में जिसको भूतकी कल्पना नहीं है, उसे भूतका डर नहीं भी सर्वत्र सर्वथा कल्याणमय गुणसमूह ही भरे हैं। लगता। इसी प्रकार अशुभ विचारोंके निकालनेकी तुम्हारी आभ्यन्तरिक आँखें तमोमयी तथा अशुभ दृष्टिसे भी उनका बार-बार चिन्तन होगा तो वे नहीं दर्शनशीला हैं, इसलिये तुम्हारा मन निरन्तर अशुभका निकलेंगे। क्रीड़ा-प्रांगण बन रहा है। रात-दिन अशुभके समूह ही उसमें धमाचौकड़ी मचाते रहते हैं। इनको यों ही रहने याद रखो — अशुभ विचारोंको निकालकर शुभ विचारोंको लाना है तो अशुभके निकालनेकी बात न दो, इनको निकालनेकी बात मत सोचो। बस, लगनके सोचकर शुभका चिन्तन आरम्भ कर दो। जगत्के साथ मंगलमय भगवान्की मंगलमयता तथा उनकी प्रपंचोंके और संसारके पापों एवं बुराइयोंके बदले सद्गुणावलीको देखना शुरू कर दो। जब उनकी भगवानुकी मंगलमयता, उनकी कल्याणस्वरूपता, उनकी मंगलमयी सद्गुणावलीको हृदयमें स्थान मिल जायगा, तब अशुभ विचार वैसे ही तुरंत विलीन और नष्ट हो दयालुता, प्रेम, भक्तवत्सलता, महत्ता, सत्यस्वरूपता,

न्यायस्वरूपता, शान्तिमयता, आनन्दमयता, निष्कामता, जायँगे, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार विलीन और नष्ट हो जाता है। 'शिव' परिपूर्णता, सर्विहितैषिता, समता आदि महान् दिव्य

श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र और श्रीजगन्नाथजी आवरणचित्र-परिचय

(सप्ताचार्य डॉ॰ श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, डी॰िलट्॰)



प्रमुख कड़ी है। यह हिन्दू जनताका पावन उल्लास है,

और है 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'के आदर्शकी साक्षात् प्रतिकृति। साथ ही वर्णभेदसे परे ऐक्यकी यह अद्भुत शृंखला है, और है अध्यात्म एवं

कलाकी एकत्र संगमभूमि। 'पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः' में प्रतिदिन सात पुरियोंमें इसका स्मरण आस्तिक लोग करते हैं। आषाढ़मासके शुक्लपक्षकी

मनाया जाता है, जिसका विशेष समारोह जगन्नाथपुरीमें आयोजित होता है। पुरीका रथयात्रा-उत्सव विश्वप्रसिद्ध है।

द्वितीया तिथिको सम्पूर्ण भारतवर्षमें रथयात्रा-उत्सव

पुरुषोत्तमक्षेत्र पुराणोंने इस पुण्य भू-भागको पुरुषोत्तम-क्षेत्र कहकर

सम्मान प्रदान किया है। मथुरामें चार प्रकारसे मुक्ति-प्राप्ति कही गयी है—'नृणां चतुर्धा विद्धाति मुक्तिम्'

(वारा॰पु॰ मथुरामा॰)। काशीमें मरणसे मुक्ति होती है—'काश्यां हि मरणान्मुक्तिः'। पर यह क्षेत्र तो एक

साथ दश अवतारोंके दर्शनजन्य पुण्यको तत्काल प्रदान

(स्क०पु० वैष्णवखण्ड पुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्य अ०५, श्लोक१४) इस क्षेत्रकी पावनताके सम्बन्धमें विष्णुपुराणका भी

कथन है—'श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रमें कण्डु ऋषि मुक्त हुए थे।' कहते हैं—'प्रम्लोचा नामकी एक अप्सराके हाव-भावसे मुग्ध महर्षि कण्डु तपस्या त्यागकर उसके साथ विहारविनोदमें

चिरकालतक रत रहे। अन्तमें तपोभंगसे खिन्न होकर वे इस पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करने लगे और यहीं 'ब्रह्मपार'-स्तोत्रका जापकर उन्होंने मुक्ति प्राप्त की।'

मत्स्यपुराणने श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रकी भूमिमें पितरोंके श्राद्ध करनेका महान् पुण्य बताया है। यहाँ किये श्राद्धसे पितरोंकी अनन्त कालके लिये तृप्ति होती है। भौगोलिक

तत्फलं लभते मर्त्यो दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम्॥

कोशोंमें यह क्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरीकी समीपस्थ भूमिके निकट निर्दिष्ट है। स्कन्दपुराणमें पुरुषोत्तमक्षेत्र सर्वाधिक पद्य-संख्यामें चर्चित है। ६० अध्यायोंमें इस क्षेत्रके तीर्थों

विस्तृत वर्णन ब्रह्मपुराणका भी है। इस पुरुषोत्तमक्षेत्रके अन्यत्र श्रीक्षेत्र, शंखक्षेत्र आदि नाम भी प्राप्त होते हैं-'पुरुषोत्तममाख्यं सुमहत् क्षेत्रं परमपावनम्।'

एवं श्रीजगन्नाथपुरी-मन्दिरका वर्णन है। प्राय: इतना ही

देवीभागवतपुराणमें यह भी कहा है कि केवल यही क्षेत्र ऐसा है; जहाँ भगवान् मानुष-लीलासे काष्ठका शरीर धारणकर निवास करते हैं।

'यत्रास्ते दारवतनुः श्रीशो मानुषलीलया'। इस

विग्रहके सम्बन्धमें भी स्पष्ट उल्लेख है कि यह दर्शनमात्रसे मोक्षप्रद है। साथ ही यह सम्पूर्ण तीर्थोंका पुण्य प्रदान करता है।

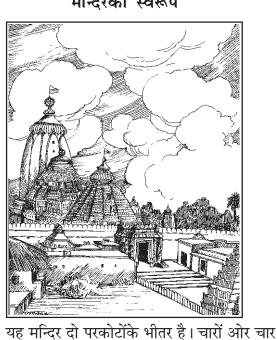
पुरुषोत्तमक्षेत्रकी सीमा इस क्षेत्रका मान १० योजन माना गया है।

परम्परानुसार एक योजन ४ कोश अर्थात् ८ मीलका होता है। कुल क्षेत्र ८० वर्गमीलका बनता है। यह भू-

करनेवाला माना गया है। स्कन्दपुराणका स्पष्ट कथन है— भाग प्रभुका विग्रह ही है-Hinghism, Piacourt Server https://dec.gg/dharma । अश्वि तिस् प्रिमा क्षिमं क्ष

संख्या ६] श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र ३	भौर श्रीजगन्नाथजी ७
**************************************	************************
इस क्षेत्रकी पूजा करने सुर-असुर-किन्नर-गन्धर्व	दिया, वह सिर भूतलमें घूमने लगा और अन्तमें यहाँ आकर
भी सर्वदा आते हैं। तीर्थराजकी मृत्तिकासे यह व्याप्त है।	गिर पड़ा, अत: इसे कपालमोचन तीर्थके नामसे पवित्रस्थल
इसके मध्य नीलाचल पर्वत इतना भव्य एवं उच्च है कि	माना गया। यहाँँकी अन्तर्वेदीकी कामना देवगण भी करते
पृथ्वीके स्तनकी भाँति शोभायमान होता है। महाकवि	हैं। यहीं कामाख्या, क्षेत्रपाल-विमला और नृसिंह भी
कालिदासने अपने मेघदूतमें रामगिरि पर्वतको पृथ्वीका	विराजमान हैं। इस अन्तर्वेदीकी रक्षा श्रीजगदम्बा करती हैं।
एक स्तन बतलाया है। सम्भव है, पुराणका यह अंश उन्हें	वटमूलमें मंगला, पश्चिममें विमला, शंखके पूर्व भागमें
रुचा हो—	सर्वमंगला, उत्तरमें अर्धांशनी और लम्बा, दक्षिणमें कालरात्रि
नीलाचलेन महता मध्यस्थेन विराजितम्।	और पूर्वमें मरीचिका विराजमान होकर रक्षा करती हैं।
एकं स्तनमिवावन्याः सूदुरात् परिभाषितम्॥	कालरात्रिके पृष्ठभागमें चण्डी हैं। रुद्राणीके आठ भेद
श्रीविष्णुभगवान्ने ब्रह्माजीसे कहा—'सागरके उत्तर	देखकर ही शिवको भी आठ मूर्ति स्वीकार करनी पड़ी।
तीरपर महानदीके दक्षिणमें जो प्रदेश है, वह तीर्थोंके	आठ लिंगोंके नाम हैं—कपालमोचन, क्षेत्रपाल, यमेश्वर,
फलका प्रदान करनेवाला है। एकाम्रकक्षेत्रसे दक्षिण-	मार्कण्डेय, ईशान, विश्वेश, नीलकण्ठ, वटेश। इन आठ
समुद्रपर्यन्त उत्तरोत्तर श्रेष्ठ भू-भाग है। यह स्थान	लिंगोंका दर्शन भी मुक्तिप्रद माना गया है। दर्शनके साथ
मायासे आच्छन्न रहता है, अत: सर्वसाधारणकी दृष्टिमें	स्मरण भी मुक्तिप्रद है। इसके प्रसिद्ध नामोंमें पुरी या
नहीं आ सकता है।' एकाम्रक पुराणकारने कहा है—	जगदीशपुरी है, वैसे स्पष्टताके लिये जगन्नाथपुरी कहते हैं।
'सुरासुराणां दुर्जेयं मायया छादितुं मम।'	गुण्डिचा-यात्रा
पुरुषोत्तमक्षेत्रकी एक विशेषता सबसे भिन्न लिखी है	पुराणोंमें इस स्थलके लिये गुण्डिचा नाम आया है।
कि यह सृष्टि और प्रलयसे दूर ही है। इस क्षेत्रके वारुण	पुरीमें श्रीमहाप्रभुके मन्दिरसे लगभग दो मील दूर
अर्थात् पश्चिम दिशामें रोहिण नामक कुण्ड है। यह परम	गुण्डिचा तीर्थ है। इसके निकट ही इन्द्रद्युम्न सरोवर है।
पवित्र है। इस कुण्डमें एक बार एक वायसराज प्यासके	गुण्डिचा-यात्राको घोषयात्रा भी कहते हैं। आषाढ़
कारण जल-ग्रहण करनेको उद्यत हुए। जलका स्पर्श करते	शुक्ल द्वितीयासे दशमीतक नौ दिनोंकी यह यात्रा
ही उनको भगवान्के दर्शन हुए और चार भुजाका उनका	विश्वप्रसिद्ध है। तीन रथोंपर बलभद्र, सुभद्रा और
दिव्य शरीर बन गया। वायस (काक)-रूप तिरोहित हो	जगन्नाथजीको विराजमान कराकर रथोंको खींचते हुए
गया था। रोहिणके तटपर चर्मचक्षुसे भी प्रभुके दर्शन	गुण्डिचा मन्दिरतक ले जाते हैं।
करनेवाले प्राणी पापोंको त्यागकर भगवान्की सायुज्य	श्रीजगन्नाथजी
नामक मुक्ति प्राप्त करते हैं। लक्ष्मीजीने यमराजसे कहा है	कुछ विद्वानोंकी मान्यता है कि श्रीजगन्नाथजीकी
कि वह ५ कोशका क्षेत्र समुद्रके भीतर व्यवस्थित है, इसमें	कथाका स्रोत ऋग्वेदका यह मन्त्र है—
सुवर्णकी बालुका है और नील पर्वत है। इसकी पश्चिमी	अदो यद् दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपुरुषम्।
सीमा शंखकी-सी आकृतिकी है। इसमें समुद्रका जल है।	तदा रभस्व दुईणो तेन गच्छ परस्तरम्॥
'यत्सम्पर्कात् समुद्रोऽपि तीर्थराजत्वमागतः।'	(१०।१५५।३)
तीर्थ नहीं, तीर्थराज संज्ञा देकर इसके महत्त्वके प्रति	काशीखण्डमें भी श्रीजगन्नाथका वर्णन है।
ध्यानाकृष्ट किया गया है।	भविष्यपुराणमें श्रीजगन्नाथमाहात्म्य है। श्रीजगन्नाथधाम
कपालमोचन	चार पावन धामोंमें भी एक धाम है, सात पुरियोंमें एक
इसी क्षेत्रमें सुप्रसिद्ध कपालमोचन नामक तीर्थ है।	पुरी है। सत्ययुगका धाम बदरीनाथ, त्रेताका रामेश्वर,
पुराणोंके अनुसार ब्रह्माजीके पाँच सिर थे। एक बार रुद्र	द्वापरका द्वारकाधाम और कलियुगका धाम श्रीजगन्नाथधाम
भगवान्ने क्रोधमें आकर उनके एक मुखका छेदन कर	है। श्रीजगन्नाथजीके प्रसादकी महिमा विख्यात है। यहाँ

भी इसे ग्रहण करना विहित है। निज (मुख्य) मन्दिरसे एक द्वार बाहर जाता है, मन्दिरका स्वरूप इसे वैकुण्ठद्वार कहते हैं। इसके समीप ही वैकुण्ठेश्वर महादेव विराजमान हैं। यहीं एक बगीचा-सा है, जहाँ



छुआछूतका दोष नहीं माना जाता। व्रत-पर्वादिके दिन

द्वार हैं। मुख्य मन्दिरके तीन भाग हैं। विमान या श्रीमन्दिर ऊँचा है। इसीमें श्रीजगन्नाथजी महाराज विराजमान हैं। जगमोहनके पीछे मुखशाला नामक

गरुडस्तम्भ

मन्दिर है। मुखशालाके आगे भोगमण्डप है।

सिंहद्वारके सम्मुख कोणार्कसे लाकर स्थापित

किया गया उच्च गरुडस्तम्भ है। पहले इसकी प्रदक्षिणा की जाती है फिर सिंहद्वारको प्रणाम करके द्वारमें प्रवेश

विग्रहका दर्शन द्वारसे ही होने लगता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'

श्रीजगन्नाथजीके दर्शनोंका लाभ प्राणिमात्रको सुलभ

करनेपर दाहिनी ओर पतितपावन श्रीजगन्नाथनीजीके

है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-अन्त्यज, धर्मी-विधर्मी कोई भी क्यों न हो, सबको मन्दिरमें जानेका और परमपिता परमात्माके दर्शन करनेका अवसर वहाँ सुलभ है। एक प्रकारसे 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का स्वरूप मुक्त

मन्दिर, श्रीशंकराचार्य तथा लक्ष्मीनारायणकी मूर्तियाँ हैं।

बन्धनोंके कारण यहाँ साकार हो गया। इस विशाल मन्दिरके अन्दर छोटे-मोटे अनेक मन्दिर हैं। श्रीलक्ष्मीजीका प्रति बारह वर्षके पश्चात् कलेवर-परिवर्तनके अनन्तर पुराने कलेवरको समाधि दे दी जाती है।

वैकुण्ठ

जय-विजय-द्वार द्वारपर जय-विजयकी मूर्तियाँ हैं। इनसे अनुमति

लेकर ही निज मन्दिरमें जाना चाहिये। जगमोहनमें भोगमण्डप है अर्थात् यहीं गरुडस्तम्भ है। श्रीचैतन्य महाप्रभु यहींसे श्रीजगन्नाथ प्रभुके दर्शन करते थे।

इस प्रकार है-महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे वसन् प्रासादान्तः सहजबलभद्रेण बलिना।

> सकलसुरसेवावसरदो सुभद्रामध्यस्थ: जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥

श्रीजगन्नाथाष्टक बड़ा सुन्दर स्तोत्र है, आज भी

भक्तोंके गलेका हार बना हुआ है। उसका एक श्लोक

'महा अम्बुधिके तीरपर कनककान्ति-युक्त नीलाचल-पर बलभद्र, सुभद्रासंयुक्त प्रासादान्तमें विराजित सम्पूर्ण

देवोंको सेवा अवसरदायी श्रीजगन्नाथ स्वामी मेरे नयनोंमें विराजते रहें।'

लम्बा सुदर्शनचक्र भी यहाँ विराजमान है। नीलमाधव, लक्ष्मी तथा सरस्वतीकी छोटी मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित हैं। लक्ष्मी, सरस्वतीके साथ केवल जगन्नाथजी ही विराजमान

हैं। जिस वेदीपर प्रभु प्रतिष्ठित हैं, वह वेदी १६ फुट

लम्बी ४ फुट ऊँची है। इसे रत्नवेदी कहते हैं। वेदीमें

श्रीजगन्नाथजीका वर्ण श्याम है। वेदीपर एक फुट

तीन ओर ३ फुट चौड़ी गली है, जिससे भावुक भगवान्की परिक्रमा करते हैं।

प्रेमाश्रुगर्त श्रीचैतन्य महाप्रभु जिस स्थानसे दर्शन करते थे

और नेत्रोंसे फुहारे पा अश्रुधारा प्रवाहित होती थी, वहाँ एक गर्त बन गया था। वह अश्रुधारासे पूरित हो जाता था। श्रीचैतन्य महाप्रभु तो जगन्नाथजीके विग्रहमें ही ज्योतिरूपमें प्रविष्ट हो गये।

संख्या ६] श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र ३	भौर श्रीजगन्नाथजी ९
**************************************	**************************************
पुराणोंमें प्रसिद्ध तीन मूर्तियाँ चन्दननिर्मित हैं। इन्हें	कि पहले जमानेमें प्राची नदीके किनारेपर पूजा करनेवाले
बदला जाता है। वह कलेवर-बदलना कहलाता है।	जैन-श्रावकोंसे शबरोंने इस मूर्तिका उद्धार किया था।
स्कन्दपुराणके अनुसार उनकी प्रतिष्ठा वैशाख शुक्ल	विग्रह-निर्माण
अष्टमी पुष्य नक्षत्र बृहस्पतिवारके दिन हुई थी।	पौराणिक कोशकारने मूर्तियाँ चन्दनकी बतलायी
कलेवरपरिवर्तन	हैं; किंतु उत्कल-परिचयकारने विशिष्ट गुणोंसे युक्त
यह द्वादश वर्षके उपरान्त आषाढ़मासमें जब	नीमके पेड़से मूर्ति-निर्माणका उल्लेख किया है। इसमें
पुरुषोत्तममास होता है और दो पूर्णिमाएँ होती	मन्दिरका कुल व्यास १९२ फुट ऊँचा, ८० फुट
हैं, तभी कलेवरका परिवर्तन होता है। कूर्म-	चौड़ा लिखा है। मन्दिरके शिखरपर नीलचक्र तथा
पुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, नृसिंहपुराण,	पताका भी लगी है। इनके भोगोंको 'छेक' कहा
अग्निपुराण, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण आदि	जाता है।
पुराणोंमें श्रीजगन्नाथजीके सम्बन्धमें कथाएँ एवं माहात्म्य	इन्द्रद्युम्नका संयोग
वर्णित हैं।	एक बार महान् प्रतापी राजा इन्द्रद्युम्नने स्वप्नमें
इतिहासके मतानुसार	चतुरायुध, लक्ष्मीसहित विष्णु भगवान्का दर्शन किया।
श्रीजगन्नाथजीकी मूर्ति जंगलमें पड़ी मिली थी।	जब उन्होंने यज्ञ किया तो भृत्योंद्वारा विचित्र वृक्षका
ययातिकेशरीने इसे लाकर पुरीमें स्थापित किया।	वर्णन सुना। मांजिष्ठवर्ण सूर्य-आभावाले वृक्षकी बात
वर्तमान मन्दिर	नारदजीसे पूछी। नारदजीने कहा—'राजन्! आपने स्वप्नमें
वर्तमानमें श्रीजगन्नाथ-मन्दिरका निर्माण गंगवंशके	विग्रह देखा था, यह वही है। श्वेतद्वीपवासी प्रभुके
राजा अनंग भीमदेवने सन् ११९८ई० में कराया	लोमसे यह बना है। राजाने यज्ञका अवभृथ-स्नान
था। श्रीजगन्नाथजी एवं बलरामकी मूर्तियोंमें पैर	किया और महामहोत्सव सम्पन्न करके ब्राह्मणोंद्वारा
नहीं हैं, सुभद्राकी मूर्तिमें हाथ और पैर दोनों	वृक्षरूप यज्ञेश भगवान्को वेदीसे स्थापित किया। जब
नहीं हैं। जगन्नाथ और बलरामजीके हाथोंमें पंजे	प्रकरण चला कि इस वृक्षसे प्रतिमा कैसी बने और
नहीं होते।	कौन इससे प्रतिमा बनाये तब आकाशवाणी हुई कि
भोग	इस वृक्षको १५ दिन ढका रहने दो। एक वृद्ध
अधिकतर यहाँ भात और खिचड़ीका भोग लगता	शिल्पी आयेगा, उसे इस कोष्ठके भीतर कर देना।
है, जिसे महाप्रसाद कहते हैं। कुछ लोग 'अटका' भी	जबतक वह निर्माण करे तबतक अनेक वाद्य ऐसे
कहते हैं। उड़ीसा सरकारके लोकसम्पर्क विभागद्वारा	बजाये जायँ, जिससे उसके आयुधोंकी ध्वनि कोई
प्रकाशित उत्कल-परिचयके अनुसार अवन्ती-नरेश महाराज	बाहर न सुने। बढ़ईके द्वारा जो छीलने-काटनेकी
इन्द्रद्युम्नने एक मन्दिर बनवाया था। सातवीं शताब्दीमें	आवाज सुनेगा, वह अन्धा और बहरा हो जायगा।
महाभव गुप्त ययातिने इन्द्रद्युम्नके स्थापित नीलमाधवको	उसका वास कल्पोंतक नरकमें होगा और वंश-नाश
जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्राके नामकी तीन मूर्तियोंमें	हो जायगा। स्वयं राजा भी भीतर प्रवेश न करे।
परिवर्तित किया और ३८ हाथ ऊँचा एक मन्दिर	जिसकी नियुक्ति की जाय, वह भी भीतर जाकर
बनवाया, जो बादमें कुछ टूट गया। बारहवीं सदीमें चाँड	बढ़ईको न देखे। जो नियुक्त पुरुष भी यदि भीतर
गंगदेवने आधुनिक मन्दिरका श्रीगणेश किया था और	जायगा तो राष्ट्रका नाश हो जायगा। उस विधिसे जब
१२४० ई०में साढ़े सात करोड़ रुपये खर्च करके महाराज	राजाने तैयारी की तो एक वृद्ध बढ़ई आया और
अनंगदेव भीमने उसकी पूर्ति करायी थी। कहा जाता है	आकाशवाणीके अनुसार उसे भीतर कर दिया गया।

फिर उसने चार मूर्तियाँ बना दीं। श्रीजगन्नाथजी, कराया और प्रतिष्ठा सम्पन्न करानेके लिये दोनों श्रीबलभद्रजी, श्रीसुभद्राजी और सर्पराज तथा हल; ब्रह्माजीके समीप ब्रह्मलोक गये। मूसल आयुध भी बनाये।' प्रतिष्ठा भगवान् श्रीकृष्णजीकी प्रतिष्ठा वैशाख शुक्ल अष्टमी सुभद्रा गुरुवार पुष्य नक्षत्रमें सम्पन्न हुई। कराब्जाभयधारिणी। चारुवदना सर्वचैतन्यरूपिणी॥ वैशाखस्यामले पक्षे अष्टम्यां पृष्ययोगता। लक्ष्मी: प्रादुर्बभुवेयं श्रीसुभद्राजी साक्षात् लक्ष्मी हैं। ऋग्वेदकी कुछ कृता प्रतिष्ठा भो विप्रा शोभने गुरुवासरे॥ ऋचाओं और पुराणोंमें इन्हें लक्ष्मीका अवतार माना भगवान् विष्णुका प्रसाद गंगाजलकी भाँति पवित्र है। जैसे गंगामें कोई पतित भी जाय तो भी वह पाप गया है। उपर्युक्त श्लोकमें उन्हें स्पष्ट ही लक्ष्मी-अवतार स्वीकारा है। प्रतिवर्ष इन विग्रहोंका संस्कार नाश करती हैं, ऐसे ही इस भगवत्प्रसादको कोई भी कैसे किया जाय, इसकी विधिका वर्णन भी प्राप्त स्पर्श करे, तो भी कोई अपवित्रता नहीं होती। होता है। जैसे-भगवानुके विग्रहसे लेप न हटाया नैवेद्यानां जगद्भर्तुर्गाङ्गं वारिसमं द्वयम्। जाय, लेप हटानेसे राज्यमें दुर्भिक्ष हो जाता है, दुष्टिस्पर्शनचिन्ताभिर्भक्षणाद्यनाशनम् विश्वासानसार वैष्णव परिवारका वंशज ही लेप करेगा। प्रसादका दर्शन, स्पर्श, भक्षण पापनाशक कहा राजा इन्द्रद्यम्नने नारदजीके निर्देशानुसार प्रासादका निर्माण श्रीजगन्नाथाष्ट्रकम् कालिन्दीतट-विपिन-संगीत-तरलो मुदाभीरी-नारी-वदन-कमलास्वाद-मधुपः। रमा-शम्भ-ब्रह्मामरपतिगणेशार्चितपदो जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भुजे सव्ये वेणुं शिरिस शिखिपिच्छं कटितटे दुकूलं नेत्रान्ते सहचर-कटाक्षं विद्धते। सदा श्रीमद्वुन्दावन-वसति-लीला-परिचयो जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवत् कनकरुचिरे नीलशिखरे वसन् प्रासादान्तः सहजबलभद्रेण सकलसुरसेवावसरदो स्वामी नयनपथगामी जगन्नाथः सजलजलदश्रेणिरुचिरो रमावाणीरामः स्फ्ररदमलपङ्केरुहमुख:। श्रतिगणशिखागीतचरितो स्वामी नयनपथगामी जगन्नाथ: स्तृतिप्रादुर्भावं पथि मिलितभूदेवपटलैः प्रतिपदमुपाकण्र्य सकलजगतां सिन्ध्-सदयो जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी कवलयदलोत्फल्लनयनो निवासी निहितचरणोऽनन्तशिरसि। नीलाद्रौ स्वामी राधा-सरसवपुरालिङ्गनसुखो जगन्नाथः नयनपथगामी न वै याचे राज्यं न च कनकमाणिक्यविभवं न याचेऽहं रम्यं सकलजनकाम्यं वरवधूम्। सदा काले काले प्रमथपितना गीतचरितो जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु सुरपते! विततिमपरां द्रुततरमसारं हर त्वं पापानां दीनेऽनाथे निहितचरणो निश्चितिमदं जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी जगन्नाथाष्ट्रकं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः शुचिः। सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति॥९॥ 🎉 ॥ इति श्रीगौरचन्द्रमुखपद्मविनिर्गतं श्रीजगन्नाथाष्ट्रकं सम्पूर्णम् ॥ Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

आध्यात्मिक प्रश्नोत्तर संख्या ६] आध्यात्मिक प्रश्नोत्तर (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) एक सज्जनने कुछ उपयोगी प्रश्न लिख भेजे हैं। बुद्धि, शरीर, इन्द्रिय आदिसे भिन्न शुद्ध चेतनके अर्थमें उनका उत्तर अपनी स्वल्पबुद्धिके अनुसार नीचे देनेकी 'आत्मा' शब्दका प्रयोग किया है। अत: उसीके अनुसार चेष्टा की जाती है। प्रश्नोंकी भाषा आवश्यकतानुसार 'आत्मा' का लक्षण किया गया है। तथा शुद्ध सुधार दी गयी है। प्रश्न इस प्रकार हैं— सिच्चदानन्दघन गुणातीत अक्षर ब्रह्मको परमात्मा कहते (१) जीव, आत्मा और परमात्मामें क्या भेद है? हैं। आकाशके दृष्टान्तसे उक्त तीनों पदार्थोंका भेद कुछ-(२) सुख-दु:ख किसको होते हैं-शरीरको या कुछ समझमें आ सकता है। जो आकाश अनन्त घटोंमें आत्माको ? यदि कहा जाय कि शरीरको होते हैं, तो शरीर समानरूपसे व्याप्त है, उसे वेदान्तकी परिभाषामें महाकाश तो जड़ पदार्थींका बना हुआ है, जड़ पदार्थींको सुख-कहते हैं और जो किसी एक घटके अन्दर सीमित है, दु:खकी अनुभूति कैसे होगी ? और शरीर तो मरनेके बाद उसे घटाकाश कहते हैं। महाकाशस्थानीय परमात्मा हैं, भी कायम रहता है, उस समय उसे कुछ भी अनुभूति नहीं घटाकाशस्थानीय आत्मा अथवा शुद्ध चेतन है और जलसे भरे हुए घड़ेके अन्दर रहनेवाले जलसहित होती। यदि यह कहा जाय कि सुख-दु:खकी अनुभूति आत्माको होती है तो यह कहना भी युक्तिसंगत नहीं मालूम आकाशके स्थानमें जीवको समझना चाहिये। इसीको होता; क्योंकि गीता आदि शास्त्रोंमें आत्माको निर्लेप, साक्षी जीवात्मा भी कहते हैं। स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण—इन तीनों प्रकारके शरीरोंमेंसे एक, दो या तीनों शरीरोंसे एवं जन्म-मरण तथा सुख-दु:खादिसे रहित बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त चीर-फाड करते समय डॉक्टरलोग सम्बन्ध होनेपर ही इसकी 'जीव' संज्ञा होती है। इनमेंसे रोगीको क्लोरोफार्म सुँघाकर बेहोश कर देते हैं। आत्मा तो कारणशरीरके साथ तो जीवका अनादि सम्बन्ध है, उस समय भी मौजूद रहता है, फिर रोगीको कष्टका महासर्गके आदिमें उसका सूक्ष्मशरीरके साथ सम्बन्ध हो अनुभव क्यों नहीं होता? जाता है, जो महाप्रलयपर्यन्त रहता है और देव-तिर्यक्-(३) शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार नाना योनियोंमें जन्म मनुष्यादि योनियोंसे संयुक्त होनेपर उसका स्थूलशरीरके आत्माका होता है या पंचभूतोंका? यदि कहा जाय कि साथ सम्बन्ध हो जाता है। एक शरीरको छोड़कर जब आत्माका, तो आत्मा तो साक्षी एवं निर्लेप होनेके कारण यह जीव दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है, उस समय पहला कर्ता नहीं है और जन्म होता है कर्मोंके अनुसार कर्मोंके शरीर छोड़ने और दूसरे शरीरमें प्रवेश करनेके बीचके फलस्वरूपमें। ऐसी दशामें आत्माका जन्म क्यों होगा और समयमें उसका सम्बन्ध सूक्ष्म और कारण दोनों शरीरोंसे रहता है और जब यह किसी योनिके साथ सम्बद्ध रहता वह सुख-दु:खका भोक्ता भी क्यों होगा? यदि कहा जाय कि पंचभूतोंका ही जन्म होता है, आत्माका नहीं, तो यह है, उस समय इसका स्थूल, सूक्ष्म, कारण—तीनों कहना भी युक्तिसंगत नहीं मालूम होता; क्योंकि मृत्युके शरीरोंसे सम्बन्ध रहता है। बाद शरीरका पांचभौतिक अंश अपने-अपने तत्त्वमें मिल (२) दूसरा प्रश्न यह है कि सुख-दु:खका भोका जाता है, फिर जन्म किसका होगा? शरीर है या आत्मा। इस सम्बन्धमें प्रश्नकर्ताका यह कहना उपर्युक्त प्रश्नोंका उत्तर क्रमश: नीचे दिया जाता है— ठीक ही है कि सुख-दु:खका भोक्ता न केवल शरीर है (१) प्राणिमात्रकी 'जीव' संज्ञा है। स्थूल, सूक्ष्म और न शुद्ध आत्मा ही। तो फिर इनका भोक्ता कौन है? एवं कारण—इन तीन प्रकारके व्यष्टिशरीरोंमेंसे एक, दो इसका उत्तर यह है कि शरीरके साथ सम्बद्ध हुआ यह

शरीरोंके सम्बन्धसे रहित व्यष्टि-चेतनका नाम 'आत्मा' पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुड्के प्रकृतिजान् गुणान्। है। इसीको 'कूटस्थ' भी कहते हैं। वैसे तो गीतादि कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥ शास्त्रोंमें मन, बुद्धि, शरीर तथा इन्द्रिय आदिके लिये भी

जीव ही सुख-दु:खका भोक्ता है। गीतामें भी कहा है—

या तीनोंसे सम्बन्धित चेतनका नाम 'जीव' है। इन तीनों

शास्त्रोमे मन, बुद्धि, शरीर तथा इन्द्रिय आदिके लिये भी 'आत्मा' शब्दका व्यवहार हुआ है; परंतु प्रश्नकर्ताने मन, 'प्रकृतिमें स्थित हुआ ही पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न

[भाग ९४ त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका संग सदसद्योनिजन्मस्॥ ही इस जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका जीवात्माका जन्म-मरण किस प्रकार होता है, कारण है।' इसका रहस्य समझनेके लिये पहले जन्म और मृत्युके योगसूत्रोंमें भी प्राय: ऐसी ही बात कही गयी है। तत्त्वको जानना आवश्यक है। महर्षि पतंजिल कहते हैं - द्रष्टुदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः। यह बात ऊपर कही जा चुकी है कि स्थूल, सूक्ष्म, (यो० द० २।१७)—द्रष्टा और दृश्य अर्थात् पुरुष और कारण-इन तीन शरीरोंमेंसे कम-से-कम एक शरीरके प्रकृतिका संयोग ही हेय अर्थात् दु:खका हेत् है। साथ सम्बन्ध जीवका रहता ही है। महाप्रलयके समय इस संयोगका कारण अविद्या अर्थात् अज्ञान है— तथा गाढ़ निद्रा एवं मूर्च्छा आदिकी अवस्थामें जीवका तस्य हेतुरविद्या (यो० द० २। २४) सम्बन्ध केवल कारणशरीरसे रहता है; ब्रह्माकी रात्रिमें, अज्ञानके कारण ही चेतन आत्मा 'मैं देह हूँ' ऐसा स्वप्नावस्थामें तथा एक स्थूल शरीरको छोड़कर दूसरे स्थूल शरीरमें प्रवेश करते समय कारण एवं सूक्ष्म दोनों शरीरोंके मानने लगता है और इसीलिये सुखी-दुखी होता है। इस अविद्यारूप कारणके नाश हो जानेपर उक्त संयोगरूप साथ सम्बन्ध रहता है और जाग्रत्-अवस्थामें, जबतक कार्यका भी नाश हो जाता है; इसीको आत्माका कैवल्य यह जीव किसी योनिविशेषसे संयुक्त रहता है, उसका अर्थात् मोक्ष कहते हैं — तदभावात् संयोगाभावो हानं स्थूल, सूक्ष्म, कारण—तीनों शरीरोंके साथ सम्बन्ध रहता तद् दृशेः कैवल्यम्। (यो० द० २। २५) है। यह भी बताया जा चुका है कि कारणशरीरके साथ समाधि, गाढ़ निद्रा (सुषुप्ति) तथा मूर्च्छाके समय सम्बन्ध तो जीवका अनादि कालसे है और जबतक यह सुख-दु:खका अनुभव नहीं होता—इसका कारण यही है मुक्त नहीं होगा तबतक रहेगा; सूक्ष्म शरीरके साथ सम्बन्ध महासर्गके आदिसे लेकर महाप्रलयपर्यन्त रहता है और कि उस समय मन-बुद्धि, जो सुख-दु:खकी अनुभूतिके द्वार हैं, अपने कारण प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं। इसीलिये स्थूल शरीरके साथ सम्बन्ध इसका पुन:-पुन: होता और डॉक्टरलोग चीर-फाडके समय क्लोरोफार्म आदिका प्रयोग टूटता है। कर्मानुसार जीवका किसी एक स्थूल शरीरके करके कृत्रिम मूर्च्छांकी स्थिति ले आते हैं। महाप्रलयके साथ सम्बन्ध होना ही उसका जन्म कहलाता है और आयु शेष हो जानेपर उस शरीरके साथ सम्बन्धविच्छेद हो

समय, जब जीवका केवल कारणशरीरके साथ सम्बन्ध रहता है, उस समय भी सुख-दु:खका अनुभव नहीं होता। सुख-दु:खका अनुभव सूक्ष्मशरीरके साथ सम्बन्ध होनेपर ही होता है। अतएव जाग्रत्-अवस्था अथवा स्वपावस्थामें ही सुख-दु:खका अनुभव होता है। स्वप्नावस्थामें स्थूलशरीरके साथ सम्बन्ध न रहनेपर भी मन-बुद्धिके साथ तो सम्बन्ध रहता ही है, अतएव उस समय जीवको प्रत्यक्षवत् ही सुख-दु:खकी अनुभूति होती है। (३) तीसरा प्रश्न यह है कि शुभाशुभ कर्मके अनुसार नाना योनियोंमें जो जन्म होता है, वह आत्माका होता है या पंचभूतोंका। इस विषयमें भी प्रश्नकर्ताका यह कहना युक्तियुक्त ही है कि शुद्ध आत्मा तो जन्मता-मरता नहीं और पंचभूतोंका भी जन्मना-मरना नहीं कहा जा सकता, फिर जन्मने-मरनेवाली वस्तु कौन-सी है?

दूसरे शरीरमें जाना-आना किसका होता है? आत्मा तो आकाशकी भाँति सर्वव्यापी है, अतः उसका गमनागमन नहीं बन सकता। इसका उत्तर यह है कि गमनागमन वास्तवमें सूक्ष्मशरीरका होता है। सूक्ष्मशरीरमें प्राणोंकी प्रधानता है और प्राण वायुरूप हैं, अतः उनका जाना-आना युक्तियुक्त ही है। किंतु जैसे घड़ेको एक स्थानसे

अब प्रश्न यह होता है कि इस प्रकार एक शरीरसे

का दूसरे स्थानमें ले जाते समय उसके अन्दर रहनेवाला का आकाश भी चलता हुआ प्रतीत होता है, उसी प्रकार गा– सूक्ष्म शरीरके एक स्थूल शरीरसे दूसरे स्थूल शरीरमें व्हा जाते समय उसके सम्बन्धसे आत्मा भी जाता हुआ प्रतीत है ? होता है—इस दृष्टिसे व्यवहारमें आत्माके भी आने–

जाना ही उसकी मृत्यु है।

इसका उत्तर यह है कि जो जीव सुख-दुःख भोगता है, जानेकी बात कही जाती है। परंतु समझानेके लिये वही जन्मता–मरता भी है। यही बात गीता (१३। औपचारिक दृष्टिसे ही ऐसा कहा जाता है; वास्तवमें २१)-में कही गयी है**—कारणं गुणसङ्गोऽस्य** आत्मा कहीं आता–जाता नहीं, वह सदा सर्वत्र है।

```
संख्या ६ ]
                                         श्रीगंगा-माहात्म्य
    इस अज्ञानजनित जन्म-मरणके अनादि चक्रसे
                                                 पास जाकर उनको भली-भाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे,
छूटनेके लिये मनुष्यको चाहिये कि वह ज्ञानी महात्माओंका
                                                 उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक
                                                 प्रश्न करनेसे परमात्मतत्त्वको भली-भाँति जाननेवाले वे
संग करे और उनसे अज्ञानके विनाशका उपाय पूछकर
उसका आचरण करे। भगवानुने भी कहा है-
```

ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।

प्राप्य वरान्निबोधत। (कठ०उ० १। ३। १४)

कुल कोटि उधारे।

बिमान

श्रुति भगवती भी कहती है— उत्तिष्ठत जाग्रत

'उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषोंके पास जाकर उनसे

प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ (गीता ४। ३४)

उस ज्ञानको तू समझ; श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यके

झगरैं

श्रीगंगा-माहात्म्य

सुरनारि, सुरेस बनाइ

ज्ञान सीखो।'

जो जन जान किए मनसा,

साजु बिरंचि रचैं, तुलसी जे महातम जाननिहारे। हरिलोक बिलोकत गंग! परी तरंग जो ब्यापकु बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ग्यान-गुनीको। हरता, सुर-साहेबु, साहेबु दीन-दुनीको॥ जो भरता, भयो द्रवरूप सही, जो है नाथु बिरंचि महेस मुनीको। तुलसी जलु काहे न सेवत देवधुनीको॥२॥ सदा निहारि मुरारि भएँ परसें पद पापु

सीस धरौं पै डरौं, प्रभुकी समताँ बड़े बारहिं बार सरीर धरौं, रघुबीरको है तव तीर रहौंगो। भागीरथी! बिनवौं कर जोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥३॥ जिस मनुष्यने गंगास्नानके लिये मनमें जानेका विचारमात्र कर लिया, उसके करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार हो गया। उसे चलता देखकर [उसे वरण करनेके लिये] देवांगनाएँ आपसमें झगड़ने लगती हैं, देवराज इन्द्र उसके लिये

लगते हैं और हे गंगाजी! तुम्हारी तरंगोंका दर्शन होते ही विष्णुलोकमें [उसके लिये] घरकी नींव पड़ जाती है। [अर्थात् उसका विष्णुलोकमें जाना निश्चित हो जाता है।]॥१॥ जिस परब्रह्म परमात्माको वेद सर्वव्यापी कहते हैं, जिसके गुण और ज्ञानकी थाह गुणीजन और शारदा भी नहीं पा सकते, जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाला, देवताओंका स्वामी तथा लोक-परलोकका

विमान बनाकर सजाने लगते हैं, ब्रह्माजी जो कि उसके माहात्म्यको जाननेवाले हैं, उसके पूजनकी सामग्री जुटाने

प्रभु है, जो ब्रह्मा, शिव और मुनिजनोंका भी स्वामी है, निश्चय वही जलरूप हो गया है। तुलसीदासजी कहते हैं—अरे, विश्वास करके सर्वदा श्रीगंगाजलका ही सेवन क्यों नहीं करता?॥२॥ हे गंगे! तुम्हारे जलके दर्शनके प्रभावसे यदि मैं विष्णु हो गया तो अपने चरणोंसे तुम्हारा स्पर्श होनेके कारण

मुझे पाप लगेगा [क्योंकि तुम्हारा जन्म विष्णुभगवान्के चरणोंसे है और यदि मैं भी विष्णु हो गया तो अपने चरणोंसे तुम्हारा स्पर्श होनेके कारण मुझे पापका भागी होना पड़ेगा] और यदि महादेव हो गया तो सिरपर धारण करनेसे मुझे डर है कि इस प्रकार अपने प्रभु भगवान् शंकरकी समता करनेके बड़े भारी अपराधसे दु:ख पाऊँगा। इसलिये

भले ही मुझे बारम्बार शरीर धारण करना पड़े, मैं तो श्रीरघुनाथजीका दास होकर ही तुम्हारे तीरपर रहूँगा। हे भागीरथि। में हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ—में वही बात कहूँगा, जिससे फिर दोष न लगे॥३॥[कवितावली]

'सतसंगति महिमा नहिं गोई'

िभाग ९४

(स्वामी श्रीअच्युतानन्दजी महाराज)

सन्त और सत्संगकी महिमाका वर्णन सद्ग्रन्थों बखान साधारण जन क्या; ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा

और सन्तवाणियोंमें भरपूर मिलता है। मर्यादापुरुषोत्तम कवि, पण्डित भी कहनेसे सकुचाते हैं। गोस्वामी

भगवान् श्रीरामकी वाणी है—'**बडे भाग पाइअ सतसंगा।**' तुलसीदासजीने लिखा है— बिधि हरि हर किब कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी।।

श्रीरामचरितमानस-उत्तरकाण्डका प्रसंग है—'एक बार भगवान् श्रीराम अपने भाइयों—लक्ष्मण, भरत, हमारे गुरुदेव भी सन्तोंकी स्तुति में कहते हैं-

शत्रुघ्न और हनुमान्जीके साथ एक मनोरम पुष्पवाटिकामें

विचरण कर रहे थे। उसी समय सन्त सनक, सनन्दन,

सनातन और सनत्कुमारजी भगवान्के समीप आ गये। चारोंको देखते ही भगवान् श्रीरामने साष्टांग प्रणाम किया

और बैठनेके लिये अपना पीताम्बर बिछा दिया।' तुलसीदासजी कहते हैं— फिर भगवान् श्रीराम कहने लगे— आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरे दरस जाहिं अघ खीसा॥

अर्थात् भगवान् श्रीराम कहते हैं—'हे मुनीश्वर! आज मैं धन्य हो गया। आपके दर्शनसे सभी पाप नष्ट

हो जाते हैं।' यहाँ सन्त-दर्शनका महत्त्व भगवान् बतला रहे हैं। सन्तोंका दर्शन भी सत्संग है। इसीलिये भगवान्

कहते हैं कि—'बड़े भाग पाइअ सतसंगा।' सन्तोंके सत्संगसे संसारका क्लेश दूर हो जाता है। सन्तोंके दर्शनसे पापोंका क्षय होता है, ऐसे कई

उदाहरण हैं। जैसे—'संत दरस जिमि पातक टरई।'

गोस्वामी तुलसीदासजीकी विनय-पत्रिकामें भी है— द्रवै दीनदयालु राघव, साधु-संगति पाइये। जब

दरस-परस-समागमादिक पापरासि जेहि नसाइये॥ सन्तोंकी महिमाका वर्णन भगवान् शंकर भी

करते हैं। गिरिजा अर्थात् पार्वतीजीसे भगवान् शंकर

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।

अर्थात् सन्तोंका सत्संग हरिकी कृपासे ही प्राप्त

(रा०च०मा० ७। १२५)

कहते हैं-बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥

अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसार किब कोबिद जोगी।

सन्तोंके ज्ञानका कोई अन्दाजा नहीं कर सकते हैं, उनको किसी सांसारिक पदार्थोंकी कोई इच्छा नहीं रहती। संसारमें जीवन-निर्वाहके लिये वे मितभोगी होते हैं। सत्यके तो वे सार ही होते हैं। वे कवि होते हैं, सारे

मोरी

ज्ञानके ज्ञाता, पण्डित होते हैं, वे महायोगी होते हैं। सन्तोंको अलौकिक तीर्थराज कहा गया है, जहाँ तुरन्त फल मिलता है। अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥ ये सन्त चलते-फिरते तीर्थराज होते हैं। जो आनन्द

और कल्याणमय होते हैं। ऐसे सन्तरूपी पावन तीर्थमें स्नान करनेवालेको सुबुद्धि, यश, उत्तमगति, सम्पत्ति और सज्जनता मिलती है। इसके लिये आश्चर्य नहीं करना

चाहिये। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं-सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥ मित कीरित गित भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥

सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥ सन्तरूपी तीर्थराजमें रामभक्तिरूपी गंगाकी धारा

की

अति

केहि

सन्तोंकी योग्यता कैसी होती है? गोस्वामी

सन्तन

मिति

स्तृति

बडि

विधि

नीच

बलिहारी।

कीजै,

अनारी॥

बहती है। ब्रह्मविचाररूपी सरस्वतीकी धारा तथा कर्तव्य-कर्म और अकर्तव्य-कर्मका वर्णन यमुनाकी धारा है। इन

तीनोंके संगम होनेपर भी त्रिवेणी नहीं हुई, त्रिवेणी कब होतीं nही visam क्रिड दूराल क्रिक्सिक क्षेत्र क्षेत्र

जज नीलमाधव बनर्जीकी अनुठी नैतिकता संख्या ६] भगवान् शंकरकी कथा आती है, तभी त्रिवेणी होती है। भगवान्से प्रार्थना करते हैं— जो सुननेवालेको आनन्द और कल्याण देनेवाली है। निज देहि सत्संग अंग इसको रामचरितमानसमें बहुत अच्छी तरहसे दर्शाया कारण शरण शोकहारी॥ भव गया है-(विनय-पत्रिका) इसे अच्छी तरह समझें - सत्संग भगवान्का निज राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥ अंग है, इसीलिये कहा गया है— बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबि नंदिनि बरनी॥ हरि हर कथा बिराजित बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥ कर लो सत्संग भाई, तेरा बेड़ा पार है। इस तीर्थराजरूप संगममें स्नान करनेका मौका सत्संग विना हो, जीवन बेकार है॥ सबको सब दिन और सब देशमें सुलभ होता है। जो असार संसार में, उसीका जीवन सार है। अच्छी तरह आदरके साथ इस तीर्थका सेवन करते हैं, सत्संग ही जिसका, जीवन आधार है।। उनका सारा क्लेश नि:शेष हो जाता है। सत्संग महिमा, अगम अपार श्रीमदाद्य शंकराचार्यजी महाराज कहते हैं-वेद पुरान जिसका, पावै नहीं पार है॥ क्षणमिह सज्जन संगतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका॥ सत्संग से ही मिलता, विमल विचार है। अर्थात्-यहाँ बस क्षणभरकी सत्संगतिका भाव कहै साधु संत भक्त, बारम्बार है॥ ही भवसागरसे तरनेमें दृढ़तर नाव बन जाता है। सद्गुरु मेंहीं का यही एक पुकार है। साध्-सन्तोंका सत्संग मिलना साधारण बात नहीं जग में 'अच्युत' जानो सत्संग सार है॥ है। सत्संग भगवानुका निज अंग है। गोस्वामी तुलसीदासजी [प्रेषक — श्रीहितेशजी मोदी] प्रेरक-प्रसंग— जज नीलमाधव बनर्जीकी अनूठी नैतिकता -बंगालके न्यायाधीश श्रीनीलमाधव बनर्जी अपनी धर्मपरायणता तथा न्यायप्रियताके लिये दूर-दूरतक विख्यात थे। वे किसी भी मुकदमेका निर्णय पूरी सत्यताका पता लगानेके बाद ही देते थे। सेवानिवृत्त होनेके बाद भी वे गरीबोंको नि:शुल्क न्याय दिलानेके कार्यमें लगे रहे। उनकी जीवनचर्या सदाचारपूर्ण थी। वृद्धावस्थामें वे किसी घातक बीमारीसे ग्रस्त हो गये। उन्हें असहनीय पीड़ा होती तो वे भगवान्से प्रार्थना करते—'प्रभो! मुझे रोगग्रस्त शरीरसे मुक्ति दो।' उन्हें शय्यापर पड़े-पड़े कष्ट झेलते हुए महीनों बीत गये। एक दिन उन्हें पुरानी कोई बात याद आयी। उन्होंने अचानक अपने परिवारके बीमा अधिकारीको बुलवाया। वे उससे बोले—'मैं स्वयं इस शारीरिक कष्टका कारण हूँ। मैंने जब युवावस्थामें बीमा करवाया था—डाइबिटीज (मधुमेह)-की बीमारीसे ग्रस्त था, किंतु बीमा करवानेके लिये बीमारीको छिपाया था। न्यायाधीशके रूपमें हमेशा सत्यका आचरण किया, किंतु उससे पहले किये गये असत्य व्यवहारके पापका फल मुझे आज इस कष्टके रूपमें भोगना पड़ रहा है, मेरे बीमेको रद्द कर दें। यह रकम परिवारको नहीं मिलनी चाहिये, किसी धर्म-कार्यमें लगायी जानी चाहिये।' बीमा रह होनेकी सूचना मिलते ही न्यायाधीश श्रीबनर्जीके मुखपर शान्ति तथा सन्तोषकी छिब दिखायी दी तथा उन्होंने तुलसी-गंगाजलका पान किया और भगवानुका स्मरण करते हुए प्राण त्याग दिये।

वाणीका सदुपयोग करें! (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

पाण्डवोंका राजसूय यज्ञ हुआ। उस जमानेमें मय कि आप आज आये, हमें मालूम था तो यह सत्य हो गया।

दानव थे, जो एक बड़े वैज्ञानिक थे। उन्होंने इस प्रकारका भले ही, शब्द न बोलें।

मण्डप बनाया कि जहाँ जल था, वहाँ जमीन दीखती और एक होता है—'शब्दजाल'। महाभारतयुद्धमें भीमसेनने

जहाँ जमीन थी, वहाँ जल लहराता हुआ दीखता। यह बात अश्वत्थामा नामक हाथीको मार दिया। फिर जाकर युधिष्ठिरसे

बोले कि आप कह दीजिये कि अश्वत्थामा मर गया, तब

द्रोणके हाथसे हथियार गिर पड़ेंगे और उसी अवस्थामें उन्हें

मारा जा सकता है। धर्मराज बहुत असमंजसमें पड़ गये,

लेकिन अन्तत: किसी प्रकार दब गये। उन्होंने कह दिया— **'अञ्चत्थामा हतो नरो वा कुंजरो'**—अश्वत्थामा मारा गया

आदमी या हाथी। बादमें हाथी बोले, तबतक श्रीकृष्णने शंख बजा दिया और वह शब्द सुनायी नहीं दिया। अश्वत्थामा

मारा गया—यह छल हो गया। शब्द-छलसे अगर हम किसीको वही शब्द कह देते हैं और हमारे मनमें समझानेकी बात कोई

दूसरी रहती है तो वह झूठ है। अतएव उद्वेगकारी वचन न बोले, सच बोले और सच भी मधुर शब्दोंमें कहे। लोग कहते हैं गर्वसे कि मैं

सच बोलता हूँ, चाहे किसीको अच्छी लगे या खारी लगे। परंतु कोई उनसे वैसे ही बोले तब। यह विचारणीय है। इसलिये वाणीको बोलना चाहिये अमृतमें घोलकर—'सत्यं

प्रियहितं च यत्'।

बोलिहं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥ (रा०च०मा० ७।३९।८)

मोर बड़ा मीठा बोलता है और साँप भी खा जाता

है। ऊपरसे मीठा बोलना ही नहीं, हृदय भी मधुर हो और जबान भी मधुर हो। मीठी बोलीका अर्थ क्या है? जिसमें

हितकी भावना भरी हो। इसलिये दूसरेके मनमें उद्वेग

सबमें भगवान् हैं-यह समझकर सबका हित करनेकी

करनेवाली जबान बोलना पाप, झुठ बोलना पाप, अप्रिय बोलना पाप, दुसरेके अहितकी बात बोलना पाप और व्यर्थ बोलना पाप है। इन पापोंसे जबानको बचाकर क्या करें?

इच्छासे सत्यप्रिय बोले और जब समय मिले तो जीभके द्वारा भगवानुका नाम लेता रहे।

यह वाणीका सदुपयोग है।

'स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥' (गीता १७।१५)

है तो अन्धेका ही पुत्र न! उनकी यह बात दुर्योधनको तीरकी तरह चुभ गयी। धर्मराज बोले-क्या कहते हो? परंतु जबानसे तो बात निकल ही गयी। आजकल लोग अपनी बातको वापस लेते हैं। गाली दे दी और कहते हैं हम अपनी बात Withdraw करते हैं — वापस लेते हैं। वाणी वापस लेनेकी चीज नहीं है। उनकी वह बात दुर्योधनको चुभ गयी। उसने ठान लिया कि या तो पाण्डव रहेंगे या हम रहेंगे। वैर बद्धमूल हो गया। इसलिये ऐसी वाणी न बोले जो दूसरेको चुभ जाय। नाम सत्य नहीं है। सत्य भावसे होता है। जैसे कोई मित्र हमारे यहाँ आये और कोई आकर बोले कि आपके मित्र आये हैं उनसे मिलना है। परंतु भूलसे अथवा अन्य किसी परिस्थितिवश मुलाकात नहीं हो पायी और रास्तेमें जाते हुए भेंट हो जाय। तब यदि कहें कि मुझे मालूम था आप आये हैं, परंतु मिल नहीं पाये तो झेंप होती है और यह कह दें कि आप कब आये तो झुठ होता है। इसलिये छलकी भाषा बनाते हैं—'आप आज आये' तीन शब्द बोले, परंतु उच्चारण इस प्रकार किया कि प्रश्नवाचक हो गया। हमें मालूम था कि यह

सबको ज्ञात नहीं थी। वहाँ दुर्योधन आये तो देखा कि जल

लहरा रहा है, परंतु वहाँ थी जमीन, उन्होंने अपने कपड़े

ऊपर उठा लिये कि कहीं भीग न जायँ। कुछ लोग

मुसकुरा दिये। कुछ और आगे बढे तो वहाँ जल था, परंतु

समतल जमीन प्रतीत हो रही थी। वहाँ वे सीधे आगे बढे

तो उनके सारे कपड़े भीग गये। यह देखकर भीमसेन और

द्रौपदी दोनों हँस पड़े। भीमसेनने कह दिया कि आखिर

जो भी बोले सत्य बोले। वैसे शब्द कह देना इसका आज आये हैं और कह भी दिया कि 'आप आज आये'। शाब्दिक रूपसे झूठ तो नहीं हुआ, परंतु हमने उनको समझाया क्या ? हमने अपने बोलनेके ढंगसे यह बताया कि हमें मालूम नहीं कि आप आज आये हैं। इसलिये यह झुठ हो गया। परंतु हम इन शब्दोंको न बोल सकें और उन्हें इशारेसे समझा दें

भारतीय अध्यात्म-सम्बन्धी श्रीअरविन्दकी चिन्तन-दृष्टि संख्या ६] भारतीय अध्यात्म-सम्बन्धी श्रीअरविन्दकी चिन्तन-दृष्टि (श्रीहरिश्चन्द्रजी श्रीवास्तव) अध्यात्म क्या है ? अर्जुनके इस प्रश्नका श्रीकृष्ण ब्रह्म, जीव और जगत्का चिन्तन किया गया है। हम उत्तर देते हैं—स्वभाव: अध्यात्ममुच्यते। (गीता ८। श्रीअरविन्दकी चिन्तनधाराका अनुसरण करते हैं। ३) अर्थात् स्वभाव ही अध्यात्म है। स्वभाव क्या है, श्रीअरविन्दके अनुसार ब्रह्म सत्य है, जगत् भी सत्य है; इसे स्पष्ट करते हुए भाष्यकार श्रीशंकराचार्य कहते हैं— क्योंकि जगत् ब्रह्ममय है। बह्म एकमेव अद्वितीय है, **'ब्रह्मणः प्रतिदेहं अन्तरात्मभावः स्वभावः।** अर्थात् उसके जैसा अन्य कोई भी नहीं है, अत: जीव भी प्रत्येक शरीरमें परमात्मा (ब्रह्म)-की अन्तरात्मारूपसे तत्त्वतः वही है, उससे भिन्न नहीं है। उपस्थिति ही स्वभाव (अपना भाव) है। यही अध्यात्म यहाँ श्रीअरविन्दका चिन्तन उन मायावादियोंसे है। केवल मनुष्य-शरीरमें ही नहीं, वरन् पश्-पक्षीसहित अलग है, जो जगतुको मिथ्या बताते हैं। वे कहते हैं-सम्पूर्ण प्रकृतिमें भगवान्की उपस्थिति है, इसे जानना-जिस प्रकार सूर्यका प्रतिबिम्ब सूर्यका ही प्रकाश होनेसे समझना-अनुभव करना आध्यात्मिकता है। यही है सत्य है, उसी प्रकार ब्रह्मसे ओतप्रोत होनेसे जगत् भी कण-कणमें भगवान्वाली भारतकी चिन्तनदृष्टि, जो सत्य है। चिन्मय जगत् भी सत्यस्वरूप भगवानुका सत्य भारतीय संस्कृतिका मूलाधार है। श्रीअरविन्द इसे ही प्रकाश है। जो लोग जगत्को व्यवहारिक रूपसे सत्य अपने चिन्तनसे परिपुष्ट करते हैं। इसीसे अनुप्राणित किन्तु पारमार्थिक रूपसे असत्य मानते हैं, उनके लिये होकर वे भारतको मात्र एक भूखण्डके रूपमें नहीं, वरन् श्रीअरविन्दका उत्तर है कि वे लोग मनको सन्तोष देनेके भवानी भारतीके रूपमें देखते हैं। वे स्वाधीनता (१५ लिये ही ऐसा कहते हैं; क्योंकि वे जगत्को सहसा नकार अगस्त १९४७)-से बहुत पहले ही भारतको देवी भी नहीं सकते। श्रीअरविन्दका निर्णय है कि सत्यस्वरूप कालीद्वारा स्वतन्त्र कराये जानेका स्वप्न देख चुके होते ब्रह्ममें कुछ भी असत्य नहीं है। हैं और प्रार्थना करते हैं कि देवी भारतभूमिपर निवास जीवके विषयमें श्रीअरविन्दका विचार है कि यह करते हुए विश्वका कल्याण करें। यही आध्यात्मिक (जीव) भी जगत्-ब्रह्मका उपभोग करनेके लिये ही चिन्तन उनके उत्तरपाड़ा भाषण (१९०९)-में भी प्रकट अवतीर्ण हुआ है। जिस प्रकार ब्रह्म सत्, चित् और होता है, जहाँ वे कहते हैं कि यही सनातन धर्म है, जो आनन्दस्वरूप है, उसी प्रकार जीव भी सत्य है, चेतन भारतको राष्ट्रीयता है, जिसका पुनर्जागरण सम्पूर्ण है और अपने अन्तस्से आनन्दमय ही है। जो कुछ मानवताके लिये वांछनीय है। दु:खरूपसे दिखता है, वह केवल आनन्दका विवर्त है। अब हम इस अध्यात्मके पीछेकी चिन्तन-प्रणालीका जिस प्रकार उद्वेलित जलसे लहर, फेन, बुलबुले आदि विचार करते हैं, जिसे दर्शन अथवा फिलासफी कहा जलके विवर्त हैं, उसी प्रकार अशान्त और उद्वेलित जाता है। यद्यपि भाषामें दर्शन और फिलासफीको चित्तमें दु:ख आदि आनन्दके विवर्त हैं। जिस प्रकार जलके प्रशान्त चित्त हो जानेपर फेन, लहर, बुलबुले सब पर्यायवाची समझा जाता है, तथापि इनमें एक मूलभूत अन्तर है। भारतीय दर्शनमें परम तत्त्वकी स्वात्मानुभृतिपर समाप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार जीवको उसका निश्चय सारा ध्यान केन्द्रित होता है, किंतु पाश्चात्य फिलासफीमें एवं शान्त आत्मस्वरूप प्राप्त हो जानेपर दु:खादि समाप्त जैसा कि उसका शाब्दिक अर्थ है, बौद्धिक विश्लेषणपर हो जाते हैं। अपने सत्यस्वरूपकी विस्मृतिके कारण ही जीव स्वयंको सीमित, दुर्बल और दुखी समझता है। जोर दिया जाता है। भारतीय दर्शनमें परम सत्यका विचार करते हुए इसका कारण उसका अज्ञान है, इसीसे अहंकार स्फुटित

भाग ९४ कृपा पीछे हट जाती है। दूसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु है त्याग। होता है, जो सभी समस्याओंकी जड़ है। यहाँ त्यागका तात्पर्य है अपनी समस्त कुटिलताओंका इस प्रकार विचार करते हुए श्रीअरविन्द हम सबको उत्साहित करते हुए कहते हैं-'हे आनन्दके त्याग तथा पूर्ण ईमानदारीके साथ सत्यका वरण और पुत्रो! जगत् लीलाके लिये है। वह (परमात्मा) आनन्दके असत्यका परित्याग। इसके लिये चाहिये हृदयमें भक्ति-लिये लीला कर रहा है, ऐसा जानकर तुम भी लीला भावना एवं श्रद्धा। इस साधनाका तीसरा महत्त्वपूर्ण अंग करो, उसीके साथ मिलकर क्रीडा करो, सभी वस्तुओंमें है समर्पण। यह निष्कपट एवं सच्चा होना चाहिये। ऐसे एक ही भोग्य भगवान्को प्राप्तकर आनन्दका भोग करो। समर्पणके साथ साधक अपनेको भगवान्के हाथोंमें सौंप भगवानुके आदेशानुसार ही मैं आनन्दके विषयमें बोल देता है। मनुष्यके शरीरमें भगवान् आत्मारूपमें विराजते रहा हूँ। हे भगवानुके पुत्रो, तुम लोग भी अपने तमस्को हैं और उनका यन्त्र है चैत्य पुरुष, जो हमारे भीतर मानो त्यागकर अपने भीतर आनन्दको प्रकाशित करो। सोया पड़ा है। जबतक यह जागता नहीं, तबतक हमारे मन और बुद्धि ही सारी क्रियाओंको नियन्त्रित करते हैं। तमस्का त्यागकर अपने भीतर आनन्दको कैसे प्रकाशित करें, इसके लिये श्रीअरिवन्दके बताये हुए पूर्ण चूँकि मन-बुद्धि जड़ है, अत: हम अज्ञान और अपूर्णतामें जीते हैं। यदि चैत्य पुरुष जाग्रत् हो जाये तो योगका साधन अंगीकार करना होगा। यह कोई नया मन-बुद्धि चैत्य पुरुषके निर्देशनमें कार्य करने लग मतवाद नहीं है और न ही प्रचलित योग-पद्धतियोंमेंसे जायँगे। अतः साधनाका लक्ष्य चैत्य पुरुषको जाग्रत् किसीको त्यागनेका ही नाम है। यह सभी पद्धतियोंको मिलाकर एक करनेका भी प्रयास नहीं करता। इसका करना है ताकि वह हमें भगवान्से संयुक्त कर दे। एकमात्र उद्देश्य है सभी भूतोंमें स्थित अद्वितीय आत्माको हमारा प्रयास है कि शरीर, मन और बुद्धि तीनों भागवत इच्छाका अनुगमन करें। शरीरके द्वारा किये साक्षात् प्राप्त करना तथा अतिमानसिक चेतनाको विकसित करना, जो मानव प्रकृतिको रूपान्तरितकर उसे दिव्य बना जानेवाले समस्त कार्य भगवान्को ही निवेदित होकर दे। पूर्ण योग सभी पुराने योगोंके सार तत्त्वको अपनाता किये जायँ। खाना-पीना आदि समस्त शारीरिक कार्य है। इसकी नवीनता इसके लक्ष्य, दृष्टिकोण और भगवान्की पसन्द या इच्छाके अनुरूप हों। मन भगवान्के पद्धतिकी समग्रतामें है। इसका लक्ष्य स्वर्ग या निर्वाण बारेमें ही सोचे और बुद्धि सत्साहित्यका ही अध्ययन करे प्राप्त करना नहीं है। यहाँ आरोहणसे प्राप्त नयी दिव्य और भगवान्का ही चिन्तन करे। इसके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। प्रार्थना हृदयके अन्त:स्थलसे उठनी चेतनाका भौतिक चेतनामें अवतरण ही इस साधनाका वास्तविक चिह्न है ताकि सामान्य जिज्ञासु साधक भी चाहिये और इसके द्वारा तुच्छ भौतिक कामनाओंकी पूर्तिकी अभिलाषा नहीं होनी चाहिये। मन्त्रका भी उस लक्ष्यको प्राप्त कर सके। यह एक कठिन आध्यात्मिक कार्य है, परंतु अध्यवसायीके लिये असम्भव भी नहीं। उपयोग किया जाना चाहिये। मन्त्र हमें उस देवतासे पूर्णयोगकी साधनामें तीन महत्त्वपूर्ण कार्य जो जोड़ता है, जिसका वह मन्त्र है। श्रीअरविन्द 'ॐ करना है, वह है—अभीप्सा, त्याग और समर्पण। **आनन्दमयि, चैतन्यमयि, सत्यमयि परमे** मन्त्रका अभीप्सा अर्थात् पूरी तन्मयताके साथ भागवत प्रयोग करनेको कहते हैं, जो जगज्जननीकी कृपा प्राप्त चेतनामें स्थित होनेकी उत्कट इच्छा। जब इस प्रकार करनेका मन्त्र है। अभीप्सा नीचेसे आह्वान करती है तो भागवत कृपा ऊपर इस योगमें ध्यान और स्मरणको भी स्थान दिया उत्तर देती है। भागवत कृपा सत्यकी अवस्थामें ही कार्य गया है। श्रीअरविन्द कहते हैं कि ध्यानकी अपेक्षा _Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma_|_MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha करती है, अटूट विश्वास और निष्ठा में हो तो भागवत स्मरण सरल है । इस बिन्दु या विचारपर ध्यान अधिक

संख्या ६] भारतीय अध्यात्म-सम्बन्धी :	श्रीअरविन्दकी चिन्तन-दृष्टि १९
*******************************	**************************************
समयतक टिकाये रखना कठिन है, किन्तु प्रभुका स्मरण	जो व्यक्ति परिश्रम करता है, वह शीघ्र सफल होता है।
करते रहना अपेक्षाकृत सरल है। कोई भी व्यक्ति अपने	श्रीअरविन्द कहते हैं, अभागा है वह मनुष्य जो भागवत
इष्टदेवका ध्यान कर सकता है, किंतु श्रीमॉॅंके माध्यमसे	मुहूर्तमें सोया रहता है और अवसरका लाभ नहीं उठाता।
जगन्माताका ध्यान अच्छा है; क्योंकि माँ करुणाकी	वास्तवमें साधकको सतत जागरूक रहना चाहिये। अपने
प्रतिमूर्ति होती हैं।	भीतरके तमस् और आलस्यको दूर फेंक देना चाहिये।
योगमार्गमें साधकको सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं,	वे कहते हैं अन्तरात्माको अपने अहंकारकी चिल्लाहटोंसे
किन्तु सिद्धियोंके द्वारा चमत्कार दिखानेसे बचना चाहिये।	दूर रखो और भागवत चेतनामें निवास करो। ऐसी
सिद्धियोंका उपयोग अपने लिये तो कदापि नहीं करना	स्थितिको ही 'सारा जीवन योग है', इस नामसे कहा
चाहिये। श्रीअरविन्दको जेलमें ही (सन् १९१० ई० में)	जाता है। इसमें जीवनका प्रत्येक कार्य और प्रत्येक क्षण
'वासुदेवः सर्वम् इति' वाली सिद्धि प्राप्त हो गयी थी,	प्रभुको समर्पित होता है।
परंतु वे भगवान्पर ही आश्रित रहे और अपने केस	कुछ प्रचलित भ्रान्तियाँ भी हैं, जिनका निराकरण
(मुकदमे)-को भगवान्पर ही छोड़ दिया। वे कहते हैं	करना आवश्यक है। कुछ लोग धर्म और आध्यात्मिकताको
कि भगवान्ने ही एक अन्य महान् कार्यके लिये	एक समझनेकी भूल करते हैं। वास्तवमें दोनोंमें अन्तर
(स्वतन्त्रता-आन्दोलनके अतिरिक्त) बाहर निकाला,	है। श्रीअरविन्द बताते हैं कि धर्म बाँस-बल्लीके उस
जिसके पश्चात् वे भागवत कार्यकी सिद्धिके लिये	ढाँचेके समान है, जिसके सहारे भवनका निर्माण किया
पाण्डिचेरी गये। श्रीअरविन्दको एक अन्य अत्यन्त	जाता है और बादमें हटा लिया जाता है। आध्यात्मिक
महत्त्वपूर्ण सिद्धि २४ नवम्बर १९२६ ई० को प्राप्त हुई,	कक्षामें प्रवेशके लिये धर्म ऐसे ही एक ढाँचेके समान
जिसे अधिमानसिक सिद्धि कहा जाता है। इसके द्वारा	है। धर्म हमें कर्तव्य-अकर्तव्यका बोध कराता है ताकि
उन्होंने जगत्के कल्याणके लिये अधिमानसिक चेतना	हमारा जीवन शास्त्रानुकूल और नैतिक हो। परंतु
(देवलोक-जैसी स्थिति)-को पृथ्वीकी भौतिक चेतनामें	आध्यात्मिक व्यक्ति तो नैतिक होगा ही, अत: उसके
उतारा। इस चेतनाके धरतीपर उतर आनेके फलस्वरूप	द्वारा धर्मका उल्लंघन नहीं हो सकता। इस कारण वह
अनेकानेक चमत्कारिक वैज्ञानिक आविष्कार सम्भव	धर्मका अतिक्रमण कर जाता है। गीतामें भी कहा गया
होने लगे। इस चेतनाके अवतरणका सुपरिणाम यह हुआ	है 'शब्द ब्रह्मातिवर्तते' (गीता ६।३), वह वेदोंमें कहे
कि साधकको अल्पावधिमें ही साधनाका परिणाम मिल	गये सकाम कर्मोंका अतिक्रमण कर जाता है।
सकता है, यदि वह पूर्ण मनोयोगसे कार्य करे। वैज्ञानिकोंको	दूसरी भ्रान्ति यह है कि योग और आध्यात्मिकता
भी आध्यात्मिक साधक-जैसा ही मानना चाहिये, जिनके	बूढ़ोंके लिये है, युवाओंके लिये नहीं। यह अवनतिमें
आविष्कार जगत्-कल्याणके लिये होते हैं। ऐसे वैज्ञानिक	ढकेलनेवाली अज्ञानजनित भ्रान्ति है। आध्यात्मिक ज्ञान
ऋषितुल्य ही हैं।	प्राप्त करके वह अर्जुन जो संन्यासी होना चाहता था,
श्रीअरविन्द 'भागवत मुहूर्त' की भी चर्चा करते	अपने कर्तव्यपथपर वापस लौट आया। अतः इस
हैं। ब्रह्ममुहूर्त और शुभ मुहूर्तकी ही तरह भागवत मुहूर्त	प्रकारकी भ्रान्तियोंको त्यागकर आध्यात्मिक जीवनकी
भी होता है। वे कहते हैं कि ऐसी घड़ियाँ आती हैं, जब	दीक्षा लेनी चाहिये। यह जितनी हो, उतना ही अच्छा।
परमात्मा मनुष्योंके बीच विचरण करता है। दूसरी ओर	आध्यात्मिक व्यक्तिको परिस्थितियोंपर निर्भर न
ऐसी घड़ियाँ भी आती हैं, जब भागवत सत्ता वापस लौट	होकर भगवान्पर निर्भर होना चाहिये। माताजी कहती
जाती है। पहलीवाली स्थिति है भागवत मुहूर्त, जिसमें	हैं, उसे पीछे हटना सीखना चाहिये। जब क्रोधका संवेग

भाग ९४

नहीं करते। उनके अन्दर माँकी पूर्ण ममता और

गुरुका पूरा धीरज है। अतः भगवान्की कृपापर भरोसा

रखते हुए साहसके साथ अपने चुने हुए पथपर आगे

कर रहे हैं। वह विद्रोह करता है, भरोसा खो देता आये तो पीछ हट जाओ। तत्काल कुछ न करो। जब

कोई तुमसे नाराज हो तो अपनी प्रतिक्रिया देनेसे बचो, है। परंतु इन सफलताओंका कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि

पीछे हटो, शान्त रहो। इस प्रकार धीरे-धीरे आध्यात्मिक हमारे अन्दर विराजमान भागवत पथ-प्रदर्शक हमारे

साधनाका सक्रिय जीवनमें अभ्यास करो। भगवान्के प्रति विद्रोहसे अप्रसन्न नहीं होते। वे हमारी दुर्बलताओंसे

मॉरीशस और ब्रिटेनमें हिन्दू संस्कृति

समझा करते थे और मनमाने ढंगसे उनका उपयोग करते थे। उन्हीं दिनों अंग्रेजोंकी दृष्टिमें हिन्द महासागरमें स्थित मेडागास्करसे पाँच सौ मील पूर्वमें एक द्वीप आया, जो उन्हें गन्नेकी खेतीके लिये उपयुक्त लगा। फिर क्या था, उन्होंने सात सौ भारतीय मजदूरोंको भेड़-बकरियोंकी तरह समुद्री जहाजमें भरकर अपने घर-परिवार और देशसे दूर उस टापूमें भेज दिया। यद्यपि ये मजदूर प्रायः अशिक्षित ही थे, परंतु इनमें हिन्दुत्व और भारतीयताके संस्कार कूट-कूटकर भरे थे। इन मजदूरोंको वहाँ क्रिश्चियन बननेके लिये विविध प्रकारके

प्रलोभन और प्रताड़नाएँ दी गयीं, परंतु इन धर्मवीरोंने अपना धर्म और अपने संस्कार नहीं छोड़े।

मॉरीशसवासियोंने हिन्दु संस्कार और भारतीय संस्कृतिको अक्षुण्ण बनाये रखा।

भी आप्लावित कर रहा है। —श्रीबिन्धाप्रसादजी द्विवेदी

बात उन दिनोंकी है, जब देश आजाद नहीं हुआ था। अंग्रेज शासक भारतीयोंको व्यक्ति नहीं, वस्तु

परिवर्तन प्रकृतिका शाश्वत नियम है, समयने करवट बदली और मॉरीशस नामक यह टापू आजाद

एक समय ऐसा था, जबिक अंग्रेज भारतसे हिन्दू धर्म मिटाना चाहते थे। उसके लिये उन्होंने ईसाई

पादिरयोंको भारत भेजा। ईसाई धर्म ग्रहण करनेवालोंको धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा दी जाने लगी। हिन्दुओंको बहुत-से प्रलोभन और प्रताड़नाएँ दी गयीं, पर राजनीतिक गुलामीमें भी हिन्दू-संस्कारोंको वे लोग नष्ट नहीं कर सके, बल्कि अब तो स्थिति यह है कि ब्रिटेनमें ही एक छोटा-सा हिन्दुस्तान बस गया है, जहाँ अनेक मन्दिर हैं एवं हिन्दू-संस्कारोंकी शिक्षाके लिये विद्यालय भी हैं। इतना ही नहीं, लीसेस्टरमें बहनेवाली सोर्ज नदीको भारतसे गङ्गाजल ले जाकर पवित्र किया गया, ताकि हिन्दु धर्मावलम्बी अपने सभी संस्कार इस नदीके तटपर कर सकें। चूँकि हिन्दू धर्ममें अन्तिम संस्कार गङ्गाके पावन-तटपर करनेका विधान है, इसलिये यहाँ ऐसा किया गया। इस प्रकार भारतीय संस्कृतिकी धारा और हिन्दू-संस्कारका प्रवाह आज ब्रिटेनको

हुआ। आज यहाँकी ७० प्रतिशत जनसंख्या हिन्दू है तथा इन लोगोंने अपने संस्कारोंको जीवित रखनेके लिये वहाँ प्रतीकरूपमें काशी, गोकुल और ब्रह्मस्थान आदि तीर्थस्थान बसा रखे हैं। मॉरीशसके प्रत्येक गाँवमें भगवान् शंकरके मन्दिर हैं, जहाँ सायंकाल प्रायः ढोलक-मँजीरेके साथ भजन-कीर्तन होता है। सप्ताहमें एक बार तुलसीकृत श्रीरामचरितमानसका पाठ अवश्य ही होता है। यहाँ गङ्गाजी नहीं हैं, अत: यहाँके हिन्दू शिवरात्रिको 'परीतालाब' नामक पवित्र सरोवरमें स्नान करते हैं और उसी सरोवरका जल भगवान् शंकरपर चढ़ाते हैं। उस दिन समस्त हिन्दू श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। इस प्रकार विपरीत परिस्थितियोंमें भी

कृतज्ञ रहो, उनकी कृपाको कभी न भूलो। क्या हतोत्साहित नहीं होते या हमारी दुर्बलताओंसे घृणा

बढो।'

होनेवाला है, ऐसी बातोंमें कभी न फँसो। यह योग

यह समझ नहीं पाता कि भगवान हमारा मार्गदर्शन

अन्तमें, श्रीअरविन्दका मार्गदर्शन 'हमारा अहंकार

प्रभुकी ओर लौटना सिखानेके लिये है।

गतिशील संसार संख्या ६] गतिशील संसार साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) केवल 'जाना' मात्र ही सत्य है, अन्य कुछ नहीं। अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं-अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥ देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं । मोह मूल परमारथु नाहीं।। (गीता २।१८) श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्यमात्रके अनुभवकी बात कहती (रा०च०मा० २।९२।८) है कि प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति प्रतिक्षण विनाशकी ओर जो संसार प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है, उसकी आशा रखना मुर्खता नहीं तो और क्या है ? फिर भी हम नयी-जा रहे हैं। यदि मनुष्य इस ओर ध्यान दे तो महान् लाभ हो सकता है। शिशुके जन्म लेनेके बादसे लोगोंकी यही नयी आशाएँ रखते हैं। क्या आशा रखनेसे इच्छित दुष्टि रहती है कि यह बड़ा हो रहा है, परंतु वस्तुएँ एवं परिस्थितियाँ प्राप्त हो जायँगी और यदि प्राप्त गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो स्पष्टत: वह प्रतिक्षण हो भी गयीं तो क्या स्थिर रह सकेंगी? यह असम्भव छोटा ही होता जा रहा है। मान लीजिये कि किसीकी है; क्योंकि स्थिर रहनेका तो उनका स्वभाव ही नहीं है। आयु सौ वर्षकी है और अबतक वह एक वर्षका हो थोडा विचार करें, यदि हमारी वर्तमान परिस्थिति नहीं बदलेगी तो नयी कैसे मिल सकेगी? नयी मिलनेका अर्थ चुका तो वास्तवमें अब वह निन्यानबे वर्षका ही है। आज किसी व्यक्तिका देहावसान हो जाता है तो हम ही है-वर्तमान परिस्थितका विनाश होना। अत: जिस कहते हैं कि अमुक व्यक्ति आज मर गया, पर वास्तवमें प्रकार यह नष्ट हो गयी, उसी प्रकार नयी परिस्थितिका तो वह प्रतिक्षण मर रहा था, मरते-मरते आज उसका भी विनाश अनिवार्य है। इसलिये जो मनुष्य सांसारिक मरना पूरा हो गया—उसके देहका अवसान हो गया। पदार्थोंको उत्पत्ति, स्थिरता अथवा प्राप्तिकी आशा अभी हम सब लोग यहाँ सत्संगमें आये हुए हैं। लगाये रहते हैं, उन लोगोंके लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं जबसे हमलोग अपने स्थानसे चले हैं, तबसे अबतक जो कहते हैं-समय बीत गया, उतने कालतक हम सब मर चुके और मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः। अभी भी मर रहे हैं, प्रतिक्षण आयु घट रही है। इस राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥ प्रकार एक दिन हमारा यह बोलना न बोलनेमें, सुनना (गीता ९।१२) न सुननेमें, रहना न रहनेमें एवं जीवित रहना मरनेमें उनकी आशा, उनके कर्म एवं उनका ज्ञान—सब अवश्य बदल जायगा। इसे कोई बड़ा-से-बड़ा वैज्ञानिक निष्फल है। प्रतिक्षण नष्ट होनेवाली वस्तुओंकी आशा कैसी? भी नहीं रोक सकता। हमलोगोंकी आजतककी अवस्थाएँ— संसारकी आशा ही परम दु:ख और इससे निराश हो बालकपन, जवानी एवं स्वास्थ्य आदि जो चली गयीं, जाना ही परम सुख है— क्या वे हमें अब वापस मिलेंगी? कदापि नहीं। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु प्रतिक्षण विनाशकी ओर जा रही है। आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्। कोई भी ऐसी वस्तु दिखायी नहीं देती, जो स्थिर हो। (श्रीमद्भा० ११।८।४४) संत कबीरजीके शब्द हैं-जो संसार देखते-देखते ही नष्ट हो रहा है, उसकी ओरसे दृष्टि हटाकर जो रह रहा है और नित्य है, उस का माँगूँ कछु थिर न रहाई। देखत नैण चल्यौ जग जाई॥ परमात्मतत्त्वकी ओर देखना ही यथार्थ दृष्टि है। विचार यह जो कुछ दीखता है, जितना दीखता है, सब प्रतिक्षण बह रहा है-नष्ट हो रहा है। इस जगत्में करना चाहिये, जो प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है, वह टिकेगा

िभाग ९४ कैसे ? ये शरीर, परिस्थिति, मान-बड़ाई, आदर-सत्कार करें—संसारकी आशासे क्या मिलेगा? इससे आयु तो आदि क्या सदा रह सकेंगे? मनुष्य इनके रहनेकी ही व्यर्थ नष्ट हो जायगी और मिलेगा केवल धोखा, परंतु नहीं, अपितु अधिकाधिक मिलनेकी भी आशा लगाये दूसरी ओर यदि परमात्माकी आशा करें तो अवश्य ही परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति होगी; क्योंकि वे नित्य और रहता है, परंतु जो एक क्षण भी स्थिर नहीं रहतीं, वे क्या मिलेंगी और क्या स्थिर रहेंगी? यदि मनुष्य इस अविनाशी हैं। संसारकी प्राप्ति कठिन ही नहीं, नितान्त सत्यकी ओर ध्यान दे तो सचमुच कृतकृत्य हो जाय। असम्भव है। भला, कहीं मृग-मरीचिकासे जलकी प्राप्ति बस, एक बार इसे ठीक-ठीक समझ लिया जाय तो यह सम्भव है ? जो एक क्षण भी स्थिर नहीं, उसकी प्राप्ति कैसी? अत: आशा केवल परमात्माकी ही रखनी स्वतः ही सब समय दिखायी देने लगेगा—स्मृति-पटलपर निरन्तर अंकित रहेगा। चाहिये। यदि स्थिरचित्त होकर विचार करें तो वे सूर्य उदय होता है तो उसका अस्त होना भी परमात्मा सबको, सब समय, स्वतः ही प्राप्त हैं। हमने निश्चित है, इसमें किसीको किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं अप्राप्त संसारको प्राप्त मान लिया है, इसलिये हमें है; किंतु सूर्यास्त होनेपर क्या हमें दु:ख होता है ? यद्यपि नित्य-प्राप्त परमात्मामें अप्राप्तिका भ्रम हो गया है। यह अँधेरा होनेपर हमारे दैनिक कार्योंमें बाधा आती है, अटल सिद्धान्त है, ठीक ज्यों-का-त्यों इसे देखना है, तथापि हमें दु:ख या जलन नहीं होती। इसमें मूल कारण इसके लिये कोई नया ज्ञान अथवा अनुसन्धान नहीं हमारी यह धारणा ही तो है कि जब सूर्य उदय हुआ करना है। इसमें क्या बाधा है? थोड़ी गम्भीरतासे विचार है तो वह अस्त भी अवश्य ही होगा। ठीक इसी प्रकार करें तो पता लग जायगा कि यह कितनी सरल संसारकी वस्तुएँ अविराम अस्तकी ओर जा रही हैं, यदि बात है। हम इस सत्यको स्वीकार कर लें—सचाईसे मान लें तो इसे एक दृष्टान्तद्वारा समझिये-गंगातटसे थोड़ी फिर प्रिय-से-प्रिय वस्तुके वियोगमें भी हमें दु:ख नहीं ही दूर मार्गकी एक प्याऊपर एक परोपकारी व्यक्ति यात्रियोंको जल पिला रहा है। लोग चलते-चलते होगा। भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुनको इस अनित्यताके रुककर जल पीते हैं, तदनन्तर फिर चलने लगते हैं। वह विषयमें समझाते हुए कहते हैं— व्यक्ति प्रत्येकको जल पिलाता है, उसका किसीके साथ 'आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥' न पहलेसे सम्बन्ध है और न जल पिलानेके बाद ही और न वह किसीसे कुछ आशा ही रखता है, उसे तो जल (गीता ५।२२) 'ये सभी पदार्थ आदि-अन्तवाले हैं, अनित्य हैं, पिलानेमात्रसे ही प्रयोजन है। उपर्युक्त दृष्टान्त मनुष्यमात्रके अनवरत विनाशकी ओर तेजीसे गतिशील हैं, इनमें कर्तव्यका दिग्दर्शन कराता है। संसारके जीवमात्र ही बुद्धिमान् — विवेकी पुरुष नहीं रमता।' यात्री हैं और हमलोग जल पिलानेवालेकी तरह हैं। हमलोगोंके पास तन, मन, धन, विद्या, बुद्धि, पद एवं 'दिन दिन छाँड्या जात है तासों किसा सनेह।' जो क्षणमात्र भी ठहरते नहीं, उनसे प्रेम कैसे करें? अधिकार आदि जो कुछ भी है, वह जल है, जो प्रतिक्षण बहता है, जिसका धर्म ही बहना है। हमलोगोंका तो इनके जानेमें कुछ भी समय नहीं लगता, तब इनसे प्रीति कैसे निभेगी? ये कुछ देर ठहरें, तब तो प्रीति हो! यही कर्तव्य है कि इस जलको रात-दिन बहनेवाले हम आशा रखते हैं इस संसारकी, जो वस्तृत: है संसारकी सेवामें लगा दें। इन बहती हुई वस्तुओंसे ही नहीं और निराश रहते हैं उन परमात्मासे, जो नित्य अविरत बहनेवाले संसारकी सेवा कर देना ही तो Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

संख्या ६] विज्ञान एवं अध्यात्ममें समन्वय अति आवश्यक २३	

'बाई रा फूल बाई रे ही चढ़ा देवे।'	फलमें आसक्त हुए कि बन्धनमें पड़े। इसलिये यही
आशय यह है कि जो वस्तु जिसके निमित्त है, वह	बात युक्तिसंगत है कि कर्म तो करो, किंतु फलकी आशा
उसीको अर्पित कर दी गयी। इस प्रकार संसारकी बहती	मत करो। श्रीगोस्वामीजीने तो दूसरेकी आशा और
हुई वस्तुओंको बहते हुए जीवोंकी सेवामें लगा देनेसे जो	भरोसेको ही जड़ता बताया है—
नित्य, अविनाशी तत्त्व है, वह स्वाभाविक ही बच रहेगा;	यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
क्योंकि उसका विनाश करनेमें कोई समर्थ नहीं है—	और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई॥
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥	(विनयप० १०३)
(गीता २।१७)	विचार करनेसे जड़ता स्पष्ट दिखायी देती है और
घरका हो अथवा बाहरका, बूढ़ा हो या जवान,	यह नियम है कि जब वह स्पष्ट रूपसे दीखने लगती
छोटा हो या बड़ा, स्वस्थ हो या अस्वस्थ, अभी जन्मा	है तो टिक नहीं सकती; क्योंकि जब वह है ही असत्य
हो या मृत्यु-शय्यापर पड़ा हो—कोई भी क्यों न हो,	तो टिकेगी कैसे?
हमारा उद्देश्य तो केवल उसकी सेवा करना है, उससे	'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।'
कुछ लेना नहीं—	(गीता २।१६)
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।	यदि आज इस बातको समझ लिया जाय कि
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥	संसारमें तो केवल जाना-ही-जाना है —'सम्यग्रीत्या
(गीता २।४७)	सरतीति संसार:', इसमें सत्य है तो केवल सेवा ही है
हमारा कर्म करनेमें ही अधिकार है, फलमें कभी	तो यह धारणा सदाके लिये स्थिर हो जायगी। इसके
नहीं।	लिये कोई नयी बात याद नहीं करनी है, कोई नया
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥	विचार नहीं करना है, केवल इस प्रत्यक्ष एवं सन्देहरहित
(गीता ५।१२)	तथ्यको स्वीकारमात्र कर लेना है।
	•••
	समन्वय अति आवश्यक ———
	उन्होंने किसी भारतीय सन्तसे भेंटकी हार्दिक इच्छा
	महोदयने सन्तसे पूछा—'आधुनिक विज्ञानके बारेमें
	तका कोई मूल्य नहीं।' चिकत एवं व्यथित वैज्ञानिकने
	प्रदान कीं, उसे आप निरर्थक बता रहे हैं?' महात्माने
	परंतु विज्ञानकी सबसे बड़ी हार है कि वह मानवको
मानवकी भाँति जीना न सिखा सका, परस्पर प्रेम करना, दूसरोंके काम आना, उन्हें सुख बाँटना न सिखा	
सका। मानवमें मानवता प्रकट करनेकी योग्यता सांसारिक विद्याओंमें नहीं है, यह महान् कार्य परा-विद्या	
ही कर सकती है।' चूँकि हमें इन्सानकी भाँति, एक नेक इन्सानकी भाँति रहकर जीवन-यापनकी उत्कट इच्छा है, अतएव दोनों विद्याओंका समन्वय अति आवश्यक है। प्रायः कहते सुना जाता है, 'अमुक व्यक्ति	
डॉक्टर तो बहुत अच्छा है, पर इन्सान किसी कामका नहीं, चरित्रहीन है, क्रोधी है, लोभी है।' गुणवान्	
बनना तथा दुर्गुणहीन मनुष्य बनना परा-विद्या ही सिखाती है। मानवता अनमोल है।—डॉ॰ श्रीविश्वामित्रजी	
The state of the s	

जीवन्मुक्त महात्माके लक्षण

(डॉ० श्री के०डी० शर्मा)

प्रारब्धवश छायाके समान सदैव साथ रहनेवाले शरीरके

ब्रह्मनिष्ठ साधक जो अपने अखण्ड ब्रह्मस्वरूपका

साक्षात्कार कर लेता है तथा देहमें रहते हुए समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है, वह शरीरमें रहते हुए ही मुक्तिका अनुभव

करता है, अत: वह जीवन्मुक्त महापुरुष कहलाता है।

श्रीमदाद्यशंकराचार्यद्वारा विरचित 'विवेक-चूडामणि' (श्लोक ४२६—४४५) तथा 'आत्मबोध' (श्लोक ४९—

५३)-में जीवन्मुक्त महापुरुषोंके लक्षणोंका वर्णन किया गया है। सदानन्द योगीन्द्रकृत 'वेदान्तसार' (श्लोक २१६—

२२७)-में भी जीवन्मुक्त महात्माओंके लक्षणोंका उल्लेख

है।'विवेक-चूडामणि'में जीवन्मुक्तको स्थितप्रज्ञ भी कहा गया है। श्रीमद्भगवद्गीताके द्वितीय अध्यायके श्लोकों

(५४-७२)-में स्थितप्रज्ञके लक्षणोंका वर्णन किया गया है। प्राचीन कालमें विदेहराजा जनक, महर्षि दधीचि, राजा शिबि और सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र आदि जीवन्मुक्त है। जीवन्मुक्त महात्माका देह और इन्द्रियों आदिमें अहंभाव

महात्मा थे। विवेक-चूडामणिके अनुसार जो यति परब्रह्ममें चित्तको

लीनकर विकार और क्रियाका त्याग करके सदा आनन्दस्वरूप ब्रह्ममें मग्न रहता है, वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। जीवन्मुक्त महात्मा निरन्तर ब्रह्माकार-वृत्तिमें स्थित रहता है, अतः

उसकी बुद्धि बाह्य विषयोंसे रहित होती है। जिसकी प्रज्ञा (आत्मा और परमात्माका शुद्ध ब्रह्मके साथ ऐक्य-बोध

ग्रहण करनेवाली विकल्परहित चैतन्यमात्र वृत्ति) अपने स्वरूपमें स्थित है, वह ज्ञानी स्थितप्रज्ञ कहलाता है। जीवन्मुक्त महात्माकी प्रज्ञा ब्रह्ममें ही स्थित रहती है तथा

करता है। जीवन्मुक्त महात्माका चित्त सम्पूर्ण दृश्य पदार्थींका बाध करके निरन्तर ब्रह्ममें लीन रहता है, परंतु उसका व्यवहार यथावत् रहता है अर्थात् व्यवहार करते हुए भी उसे स्वप्नवत् समझनेके कारण उसकी दृश्य पदार्थींमें आस्था

वह जगत्-प्रपंचसे रहित होकर निरन्तर आत्मानन्दका अनुभव

नहीं होती तथा उसका बोध सर्वथा वासनारहित होता है और उसकी संसार-वासना शान्त हो गयी है। जीवन्मुक्त महापुरुष व्यवहार-दृष्टिमें विकारवान् प्रतीत होता हुआ भी अपने निर्विकार-स्वरूपमें रहता है तथा उसका चित्त

जन्म-मृत्यु आदिकी चिन्ताओंसे पूर्णतः मुक्त रहता है।

रहते हुए भी जीवन्मुक्त महापुरुषमें अहंता और ममताका नितान्त अभाव होता है। जीवन्मुक्त यति बीती हुई बातोंको याद नहीं करता, भविष्यकी चिन्ता नहीं करता और वर्तमानमें

भाग ९४

प्राप्त हुए सुख-दु:खादिमें उदासीन रहता है तथा इस गुणदोषमय संसारमें सर्वत्र समदर्शी रहता है एवं इष्ट तथा अनिष्ट वस्तुकी प्राप्तिमें समानभाव रखनेके कारण उसके चित्तमें कोई भी विकार नहीं होता। जीवन्मुक्त यतिका

चित्त ब्रह्मानन्दरसास्वादमें आसक्त रहनेके कारण उसे बाह्य और आन्तरिक वस्तुओंका कोई ज्ञान नहीं होता। श्रुति (या गुरु)-से महावाक्य-श्रवणके द्वारा जिसे अपने ब्रह्मभावकी अनुभूति हो गयी है और जो संसार-रूप बन्धनसे

तथा अन्य वस्तुओंमें 'इदं मम' (यह मेरा है) भाव कभी नहीं होता। वह प्रज्ञाके द्वारा अपनी अन्तरात्मा तथा ब्रह्मके बीच और सृष्टि तथा ब्रह्मके बीच कोई भेद नहीं देखता। साधु पुरुषोंद्वारा इस शरीरके सत्कार किये जानेपर और दुष्टजनोंसे पीड़ित होनेपर भी जिसके चित्तका समान भाव रहता है, वह मनुष्य जीवन्मुक्त है। समुद्रमें नदियोंके प्रवाहके

मुक्त हो चुका है, वह महात्मा जीवन्मुक्तके लक्षणोंसे सम्पन्न

समान दूसरोंके द्वारा प्रस्तुत किये विषय (निन्दा-स्तुति, प्रिय-अप्रिय आदि) आत्मस्वरूप प्रतीत होनेसे जिसके चित्तमें किसी प्रकारका क्षोभ (विकार) उत्पन्न नहीं होता, वह यतिश्रेष्ठ जीवन्मुक्त है। जीवन्मुक्त महापुरुषको पूर्ववत् संसारकी आस्था नहीं रहती, क्योंकि ब्रह्मके एकत्वज्ञानसे

कामी पुरुषकी भी कामवृत्ति माताको देखकर कुण्ठित हो जाती है, उसी प्रकार पूर्णानन्दस्वरूप ब्रह्मको जान लेनेपर जीवन्मुक्त महापुरुषकी संसारमें प्रवृत्ति नहीं होती। जीवन्मुक्त महात्माके संचित कर्म, संशय, विपर्यय

कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। इस सम्बन्धमें मुण्डकोपनिषद्

वासनाएँ (संस्कार) क्षीण हो जाती हैं। जिस प्रकार अत्यन्त

(विपरीत ज्ञान या भ्रान्तियाँ) और क्रियमाण कर्म नष्ट हो जाते हैं, परंतु देहपर्यन्त प्रारब्ध कर्म तो भोगने ही पड़ते हैं। देहपात् होनेपर जीवन्मुक्त महात्माके प्रारब्ध

संख्या ६] जीवन्मुक्त मह	ात्माके लक्षण २५
\$	\$
(२।२।८)-में कहा गया है—	जीवन्मुक्तके लक्षणों (श्लोक २१६—२२७)-का वर्णन
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छद्यन्ते सर्वसंशयाः।	किया गया है कि 'जो अपने अखण्ड ब्रह्मस्वरूपका
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥	साक्षात्कार कर लेता है तथा अज्ञान और उसके कार्य
अर्थात् कार्य-कारणस्वरूप ब्रह्मका साक्षात्कार कर	(संचित कर्म, संशय, भ्रान्तियाँ आदि)-का नाश हो
लेनेपर जीवकी 'हृदयग्रन्थि' (हृदयमें आश्रित कामनाएँ)	जानेसे समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है, ऐसे ब्रह्मनिष्ठ
नाश हो जाती हैं, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और कर्म	साधकको जीवन्मुक्त कहते हैं। जीवन्मुक्त महात्मा
क्षीण हो जाते हैं। कठोपनिषद् (२।३।१४-१५)-में	क्रियमाण कर्मों और भोगे जा रहे प्रारब्ध कर्मफलोंमें
कहा गया है कि ' जब मरणधर्मा साधकके हृदयकी अहंता–	सत्यत्व-बुद्धि नहीं रखता। वह नेत्रवाला होकर भी
ममतारूप समस्त अज्ञानजनित ग्रन्थियाँ (कामनाएँ) नष्ट	नेत्रहीनके समान है तथा कानोंवाला होकर भी कर्णहीनके
हो जाती हैं, तब वह अमर हो जाता है अर्थात् जीवन्मुक्त	समान है और जागते हुए भी सोयेहुएके समान देखता
हो जाता है और इस शरीरसे ही ब्रह्मभावको प्राप्त हो	नहीं है। वह केवल अद्वैतमें स्थित होनेके कारण द्वैतको
जाता है। बस इतना ही सम्पूर्ण वेदान्तोंका अनुशासन (आदेश)	नहीं देखता तथा कर्म करते हुए भी निष्क्रिय है। इस
है।' इसी प्रकारका भाव बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४।७)-	जगत्में निश्चय ही वह आत्मज्ञानी है तथा वह
में भी प्रकट किया गया है।	शुभाशुभके प्रति उदासीन रहता है। जीवन्मुक्त महापुरुष
आद्यशंकराचार्यकृत 'आत्मबोध' नामक पुस्तकमें	अद्वैत तत्त्वको जान लेता है तथा 'मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ' इस
जीवन्मुक्त महापुरुषके लक्षणों (श्लोक ४९—५३)-का	अहंकारको भी त्याग देता है। जीवन्मुक्त महापुरुषको
वर्णन किया गया है कि 'जिस प्रकार भ्रमरका ध्यान करते	आत्मबोध होता है तथा उसमें अहिंसा, द्वेषहीनता आदि
हुए कीट भ्रमर हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानसे युक्त जीवन्मुक्त	गुण सहजरूपमें होते हैं। वह देहयात्रामात्रके लिये
अपनी उपाधियोंके गुणोंको त्याग देता है और सत्-चित्-	प्रारब्ध फलोंके अनुसार अनासक्त भावसे जीवनयापन
आनन्द (सच्चिदानन्द) स्वरूप ब्रह्म हो जाता है। जीवन्मुक्त	करता है तथा प्रारब्धका क्षय हो जानेपर वह अखण्ड
योगी मोहरूपी समुद्रको पार करके, राग–द्वेष आदिसे रहित	ब्रह्ममें स्थित हो जाता है।' बृहदारण्यकोपनिषद्
तथा शान्तिसे युक्त होकर आत्मामें ही रमण करता हुआ	(४।४।६)-के अनुसार 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति
स्थित रहता है। बाह्य अनित्य सुखोंकी आसक्तिको त्याग	ब्रह्मेव सन् ब्रह्माप्येति अर्थात् 'जीवन्मुक्त महात्मा
करके आत्माके आनन्दसे सन्तुष्ट हुआ घड़ेमें स्थित दीपकके	(अकाम, निष्काम, आप्तकाम, आत्मकाम)-के प्राणोंका
समान स्वयंमें स्थित होकर मानो अपने भीतर ही प्रकाशित	उत्क्रमण नहीं होता, किंतु वह विद्वान् यहीं ब्रह्मरूप हो
होता रहता है। वह मुनि उपाधियोंमें स्थित होकर भी	जाता है।' बृहदारण्यकोपनिषद् (३।२।११)-में कहा
उनके गुणोंसे आकाशकी भाँति निर्लिप्त रहता है, सब	गया है कि 'जीवन्मुक्त महात्मा तत्त्वज्ञ होता है।
कुछ जानते हुए भी मूढ़की भाँति निवास करता है और	देहपात्के पश्चात् बन्धनका नाश हो जानेपर मुक्तपुरुषका
अनासक्त होकर वायुके समान विचरण करता है तथा	कहीं गमन नहीं होता तथा उसके प्राण परमात्माके साथ
उपाधियोंके नष्ट हो जानेपर वह जलमें जलके समान,	अभेदको प्राप्त हो जाते हैं। कठोपनिषद् (२।२।१)-
आकाशमें आकाशके समान अथवा तेजमें तेजके समान	के अनुसार 'विमुक्तश्च विमुच्यते' अर्थात् 'जीवन्मुक्त
अपने निर्गुणस्वरूप (अर्थात् सर्वव्यापी) ब्रह्ममें विलीन हो	महापुरुष इस शरीरके रहते हुए ही कर्मबन्धनसे मुक्त
जाता है। जीवन्मुक्त महात्माके लिये ब्रह्मकी प्राप्तिसे बढ़कर	हुआ ही मुक्त हो जाता है।'
अन्य कोई सुख नहीं तथा ब्रह्मके ज्ञानसे बढ़कर और कोई	जीवन्मुक्त महापुरुषकी जीवनचर्या — श्रीमदाद्य-
ज्ञान नहीं है।'	शंकराचार्यविरचित 'विवेकचूडामणि'के अनुसार 'जीवन्मुक्त
सदानन्द योगीन्द्रकृत 'वेदान्त-सार' नामक पुस्तकमें	महात्मा विषयोंके प्राप्त होनेपर न दुखी होता है, न

[भाग ९४ ****************** आनन्दित होता है और न उनसे विरक्त होता है। वह हुए भी सदा मुक्त और कृतार्थ ही है तथा शरीररूप उपाधिके नष्ट होनेपर वह ब्रह्मभावमें स्थित हुआ ही तो निरन्तर आत्मानन्दरससे तृप्त होकर स्वयं अपने-आपमें ही क्रीड़ा करता है और आनन्दित होता है। जिस अद्वितीय ब्रह्ममें लीन हो जाता है। ब्रह्मज्ञ उपाधियुक्त हो प्रकार खिलौना मिलनेपर बालक अपनी भूख और या उपाधिमुक्त हो, सदा ब्रह्म ही है। जीवन्मुक्त महात्माका शारीरिक व्यथाको भी भूलकर उससे खेलनेमें लगा रहता देह प्रारब्ध कर्मोंका फल भोगता है, परंतु उसको इच्छा– है, उसी प्रकार अहंकार और ममतासे शून्य होकर अनिच्छा या अभिमान बिलकुल भी नहीं रहता। वह जीवन्मुक्त महात्मा अपने आत्मामें आनन्दपूर्वक रमण सभी संकल्प-विकल्पोंसे मुक्त होकर देहमें साक्षिभावसे करता है। वह स्वाधीन भावसे सर्वत्र विचरण करता है, परम शान्तिपूर्वक निवास करता है। वृक्षके सुखे हुए वेदान्तके पथका अनुसरण करता है और परब्रह्ममें क्रीडा पत्तेके समान ब्रह्मज्ञ महात्माका देह चाहे जहाँ भी पतित करता है। वह देहाभिमानसे रहित, बाह्य विषयोंसे हो जाय, वह स्वयं तो मृत्युसे पूर्व ही ज्ञानाग्निसे दग्ध हुआ रहता है। जैसे दूधमें मिलकर दूध, तैलमें मिलकर अनासक्त तथा देहका आश्रय लेकर प्राप्त हुए विषयोंका बालकके समान दूसरोंकी इच्छानुसार भोग करता है। तैल और जलमें मिलकर जल एक ही हो जाते हैं, वैसे एकाकी विचरण करनेवाला, कामनाशून्य होकर सर्वदा ही जीवन्मुक्त महात्मा परमात्माके साथ अभिन्न हो जाता अपनी आत्मामें ही सन्तुष्ट रहनेवाला, स्वयं सभीकी है। श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचित विवेकचूडामणिके तृतीय आत्माके रूपमें विराजमान, वह जीवन्मुक्त महापुरुष श्लोकके अनुसार दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्। सर्वात्मभावसे स्थित रहता है। वह नित्य-तृप्त और मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥ समदर्शी होता है। वह महात्मा सब कुछ करता हुआ भी अकर्ता है, नाना प्रकारके फल भोगता हुआ भी अर्थात् मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व (मुक्त होनेकी इच्छा) और महान् पुरुषोंका संग—ये तीनों अत्यन्त दुर्लभ हैं अभोक्ता है, शरीरधारी होते हुए भी अशरीरी है और परिच्छिन्न होनेपर भी सर्वव्यापी है। सदा अशरीर-भावमें और भगवत्कृपासे ही प्राप्त होते हैं। जीवन्मुक्त महात्माके लिये न कुछ कर्तव्य और न कुछ प्राप्तव्य। ब्रह्माकार स्थित रहनेसे इस ब्रह्मवेत्ताको प्रिय अथवा अप्रिय तथा शुभ अथवा अशुभ कभी छू नहीं सकते। जिसका वृत्तियुक्त जीवन्मुक्त महात्माके महत्त्वका वर्णन देहादि-बन्धन टूट गया है, उस सत्यस्वरूप मुनिको वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावलीकार स्कन्दपुराण (माहेश्वर०, शुभ-अशुभके फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती। कौमार० ५५।१४०)-को उद्धृत करते हैं— बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४।७)-के अनुसार जीवन्मुक्त कुलं पवित्रं जननी कृतार्था महापुरुषका शरीर तो साँपकी काँचुलीके समान प्राणवायुद्वारा वसुन्धरा पुण्यवती च तेन। कुछ इधर-उधर चलायमान होता हुआ पड़ा रहता है, अपारसच्चित्सुखसागरेऽस्मिँल्लीनं क्योंकि वह 'देह' में अहंता-बोधसे मुक्त रहता है।' ब्रह्मणि यस्य चेतः॥ जीवन्मुक्त महात्माका साक्षिभाव—देहाभिमानसे अर्थात् जिसका मन अपार सिच्चदानन्दसमुद्ररूप रहित जीवन्मुक्त महात्मा भोजन-पान आदि विषयोंमें परब्रह्ममें लीन हो गया है, उसका कुल पवित्र हो जाता सामान्य संसारी लोगोंके समान ही आचरण करता है, है, माता कृतकृत्य हो जाती है और उसके कारण पृथ्वी परंतु वह सभी संकल्प-विकल्पोंसे मुक्त होकर देहमें भी पुण्यवती हो जाती है। ब्रह्मवेत्ताकी दृष्टिमें सारा साक्षिभावसे परम शान्तिपूर्वक निवास करता है। वह न संसार सच्चिदानन्दस्वरूप हो जाता है, असत् जड़ और तो इन्द्रियोंको भोग्य विषयोंमें लगाता है और न ही उन्हें दु:ख उसे प्रतीत नहीं होते और उसकी दृष्टिमें द्रष्टा, विभागोंकेuiह्मताठाहै ८०गेत इस्कर बाह्मानाई:/गेवेहित.gर्कुकेnaह्मय तथा MABE(स्वीपनी) EBV हे कि एहीं राहिबडी Nona महाराज विश्वामित्र—राजर्षिसे ब्रह्मर्षि

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

महाराज विश्वामित्र—राजर्षिसे ब्रह्मर्षि

गीताके सोलहवें अध्यायमें काम, क्रोध तथा इच्छा प्रकट की। राजकन्याने यह समाचार अपनी

लोभको आसुरी सम्पत्ति बताते हुए भगवान् कहते हैं 'काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं। अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये। इन तीनों नरकके द्वारोंसे मुक्त पुरुष अपने कल्याणका आचरण करता है, इससे वह परमगतिको जाता है अर्थात् मुझको प्राप्त हो जाता है।' महाराज विश्वामित्रका जीवन मनुष्यके इन्हीं तीन

संख्या ६]

विकारोंपर विजय प्राप्त करनेका अभियान है, जिन्होंने

कठोर तपस्याके द्वारा इन्द्रियसंयमकर ब्रह्मका साक्षात् कर लिया। वे भोगोंसे सम्पन्न विलासितापूर्ण क्षत्रिय जीवनसे विरक्त हो ज्ञानी मुनियोंके श्रेष्ठ मार्गपर आ गये, जहाँ इन विकारोंसे जुझते हुए अन्ततः ब्रह्मर्षिका परमपद प्राप्त कर लिया। महाभारतके अनुशासनपर्वमें युधिष्ठिर भीष्मसे पूछते हैं—पितामह! यदि तीनों वर्णोंके मनुष्योंके लिये ब्राह्मणत्व प्राप्त करना कठिन है तो महात्मा विश्वामित्र क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण कैसे हो गये? भीष्मजीने कहा-युधिष्ठिर! पूर्वकालमें विश्वामित्रजी क्षत्रिय होकर भी जिस प्रकार ब्राह्मण तथा ब्रह्मर्षि हुए, उस प्रसंगको तुम यथार्थ रूपसे सुनो। भरतवंशमें एक अजमीढ़ नामक राजा हुए थे, उनके पुत्र महाराज जहु थे, जिन्होंने

गंगाजीको अपनी पुत्री बनाया था। जहुका पुत्र सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीपका पुत्र बलाकाश्व था। उससे वल्लभका जन्म हुआ। वल्लभके इन्द्रके समान कान्तिमान् एक पुत्र

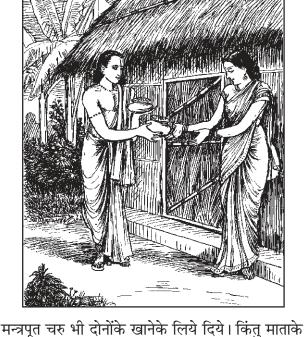
हुआ, जिसका नाम कुशिक था। कुशिकके पुत्र महाराज गाधि हुए। उनके कोई पुत्र नहीं था, इसलिये वे

सन्तानकी इच्छासे वनमें रहकर यज्ञानुष्ठान करने लगे। वहाँ यज्ञसे उन्हें एक सत्यवती नामकी अनुपम सुन्दरी कन्या प्राप्त हुई। सत्यवतीका राजा गाधिने च्यवनके पुत्र ऋचीकमुनिके साथ विवाह कर दिया। ऋचीकमुनिने

तुम्हारी माताको शीघ्र ही एक गुणवान् पुत्रकी प्राप्ति होगी और तुम्हें भी एक गुणवान् पुत्र उत्पन्न होगा। तुम्हारी माता ऋतुस्नानके पश्चात् पीपलके वृक्षका आलिंगन करे और तुम गूलरके वृक्षका, इससे तुम दोनोंको पुत्रकी प्राप्ति होगी। मुनिने दो अलग-अलग

मातासे कहा तो माताने कहा-बेटी! तुम्हारे पतिको

मुझपर भी कृपा करनी चाहिये। वे तपस्याके बलपर सर्वसमर्थ हैं। ऋचीकमुनिने सत्यवतीसे कहा—मेरी कृपासे



कहनेपर सत्यवतीने वृक्ष और चरु अदल-बदल लिये। महर्षि ऋचीकने जब गर्भवती सत्यवतीकी ओर दृष्टिपात

किया तो समझ गये कि चरु और वृक्षकी अदला-बदली हुई है। उन्होंने सत्यवतीसे कहा यह तुमने अच्छा नहीं

किया है। मैंने तुम्हारे चरुमें सम्पूर्ण ब्रह्मतेजका सन्निवेश

किया था तथा तुम्हारी माताके चरुमें समस्त क्षत्रियोचित शक्तिकी स्थापना की थी। अब तुम तो कठोर कर्मवाले

क्षत्रियको जन्म दोगी और तुम्हारी माता उत्तम ब्राह्मणको सत्यवतीके व्यवहारसे प्रसन्न होकर उसे वरदान देनेकी जन्म देगी। सत्यवतीने शोकसे सन्तप्त होकर पतिके

[भाग ९४ राजर्षि विश्वामित्र सैनिकों, मन्त्रियों, अन्तःपुरकी रानियों, चरणोंमें विनती की कि ब्रह्मर्षे! मुझपर कृपा करें। मेरा पुत्र क्षत्रिय न हो। मेरे पुत्रका पुत्र भले ही कठोर कर्म ब्राह्मणों और पुरोहितों, अमात्यों-भृत्योंके साथ बहुत ही करनेवाला हो जाय, परंतु मेरा पुत्र ऐसा न हो। महर्षिने सन्तुष्ट हुए। 'अच्छा, ऐसा ही हो' कहकर अपनी पत्नीको सान्त्वना राजा विश्वामित्रने महर्षि वसिष्ठसे कहा—'ब्रह्मन्! दी। समयपर सत्यवतीने जमदग्नि नामक उत्तम पुत्रको आप स्वयं मेरे पूजनीय हैं तो भी आपने मेरा पूजन किया, उत्पन्न किया, जिनके पुत्र कठोर कर्मवाले भगवान् भलीभाँति आदर-सत्कार किया। भगवन्! अब मैं एक परशुराम हुए तथा उनकी माता राजा गाधिकी पत्नीने बात कहता हूँ! आप मुझसे एक लाख गौएँ लेकर यह महातपस्वी विश्वामित्रको जन्म दिया, जिन्होंने क्षत्रिय चितकबरी गाय मुझे दे दीजिये; क्योंकि यह गौ रत्नरूप होकर भी ब्रह्मर्षिका पद प्राप्त किया। महाराज कुशिकके है और रत्न लेनेका अधिकारी राजा होता है।' विश्वामित्रके वंशज होनेके कारण विश्वामित्रजीको कौशिक भी कहा ऐसा कहनेपर महर्षि वसिष्ठने राजाको उत्तर देते हुए जाता है। कहा—'नरेश्वर! मैं एक लाख या सौ करोड अथवा वाल्मीकि रामायणमें गाधिपुत्र महाराज विश्वामित्रकी चाँदीके ढेर लेकर भी बदलेमें इस शबला गौको नहीं दे राजर्षिसे ब्रह्मर्षितककी कठोर तपस्यासम्पन्न जीवनयात्राका सकता। यह मेरे पाससे अलग होनेयोग्य नहीं है। मेरा विस्तारसे वर्णन आया है। महाराज विश्वामित्र पहले यह सब कुछ इस गौके ही अधीन है, मैं सच कहता एक धर्मात्मा राजा थे। इन्होंने शत्रुओंके दमनपूर्वक हूँ — यह गौ ही मेरा सर्वस्व है और यही मुझे सब दीर्घकालतक राज्य किया था। वे धर्मज्ञ और विद्वान् प्रकारसे सन्तुष्ट करनेवाली है। राजन्! बहुतसे ऐसे होनेके साथ ही प्रजावर्गके हित-साधनमें तत्पर रहते थे। कारण हैं, जिनसे बाध्य होकर मैं यह शबला गौ आपको इन्होंने कई हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन तथा नहीं दे सकता।' विश्वामित्रने अनेक प्रलोभन दिये किंतु मुनि वसिष्ठने अपना निश्चय सुनाया कि मैं इस राज्यका शासन किया। एक समयकी बात है, महातेजस्वी राजा विश्वामित्र कामधेनुको कदापि नहीं दुँगा। तब राजा विश्वामित्रकी आज्ञासे उसके सैनिक उस धेनुको बलपूर्वक घसीटने एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पृथ्वीपर विचरण कर रहे लगे। शोकाकुल गौने ब्रह्मर्षिके सामने याचना की कि थे। एक दिन वे महर्षि वसिष्ठके आश्रममें पहुँचे, जो दूसरे ब्रह्मलोकके समान जान पड़ता था। यथोचित क्या आपने मुझे त्याग दिया, जो ये राजाके सैनिक मुझे आदर-सत्कारके पश्चात् महर्षि वसिष्ठने विश्वामित्रसे आपके पाससे दूर लिये जा रहे हैं? ब्रह्मर्षि वसिष्ठने कहा—'महाबली नरेश! तुम्हारा प्रभाव असीम है। मैं कहा—'शबले! मैं तुम्हारा त्याग नहीं करता। तुमने मेरा तुम्हारा और तुम्हारी सेनाका यथायोग्य आतिथ्य–सत्कार कोई अपराध नहीं किया है। ये महाबली राजा अपने करना चाहता हूँ।' बार-बार आग्रह करनेपर राजा बलसे मतवाले होकर तुमको मुझसे छीनकर ले जा रहे विश्वािमत्रने कहा—'मुनिवर! आपकी आज्ञा मुझे स्वीकार हैं।' कामधेनुने महायशस्वी वसिष्ठसे आज्ञा पाकर है।' मुनिवर वसिष्ठने अपनी कामधेनु गौको बुलाकर अनेक सैनिकोंकी सृष्टि की तथा विश्वामित्रकी सेनाका कहा—'शबले! मैंने सेनासहित इन राजर्षिका महाराजाओंके संहार कर डाला। महात्मा वसिष्ठद्वारा अपनी सेनाका योग्य उत्तम भोजन आदिके द्वारा आतिथ्य-सत्कार संहार हुआ देख विश्वामित्रके सौ पुत्र अत्यन्त क्रोधमें करनेका निश्चय किया है। तुम मेरे इस मनोरथको सफल भरकर अस्त्र-शस्त्र लेकर वसिष्ठमुनिपर टूट पड़े। करो।' महर्षि वसिष्ठके ऐसा कहनेपर कामधेनुने जिसकी महर्षिने हुंकारमात्रसे उन सबको जलाकर भस्म कर जैसी इच्छा थी, उसके लिये वैसी ही सामग्री जुटा दी। डाला। पुत्र और सेनाके मारे जानेसे महायशस्वी विश्वामित्र

संख्या ६] महाराज विश्वामित्र	— राजर्षिसे ब्रह्मर्षि २९
******************************	<u>*********************************</u>
लिज्जित हो बड़ी चिन्तामें पड़ गये। उनके एक ही पुत्र	छोड़कर चले गये। तब त्रिशंकुने विश्वामित्रजीके पास
बचा था, उसको उन्होंने राजाके पदपर नियुक्त कर दिया	जाकर सब वृत्तान्त सुनाया और स्वर्ग भेजनेके लिये यज्ञ
तथा स्वयं वनमें चले गये। हिमालयके पाश्वर्भागमें	करानेकी प्रार्थना की। अपने प्रतिद्वन्द्वी विसष्ठद्वारा यज्ञकी
जाकर भगवान् महादेवकी प्रसन्नताके लिये महान्	अस्वीकारताको सुनकर वे अपना वर्चस्व प्रदर्शित करनेकी
तपस्या करने लगे। कुछ कालके पश्चात् आशुतोष	भावनासे यज्ञ करानेको तैयार हो गये। अपने शिष्योंद्वारा
भगवान्ने वरके रूपमें महातपस्वी विश्वामित्रको अनेक	महर्षियोंको आमन्त्रितकर विश्वामित्रजीने यज्ञ आरम्भ
अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये, जिन्हें विश्वामित्र वसिष्ठके	करवाया और स्वयं यज्ञके याजक बने। सारे ऋषि
आश्रमपर जाकर प्रयोग करने लगे। ब्रह्मापुत्र वसिष्ठने	विश्वामित्रके तपके प्रभावको सुनकर आ गये, किंतु
ब्रह्मदण्डको उठाकर विश्वामित्रके द्वारा छोड़े गये	महर्षि वसिष्ठके सौ पुत्र नहीं आये। इसपर क्रोधके
ब्रह्मास्त्रसहित सभी शस्त्रास्त्रोंको ध्वस्त कर दिया। सब	वशीभूत होकर विश्वामित्रजीने वसिष्ठजीके पुत्रोंको मार
ओरसे पराजित होकर विश्वामित्र बोले—'क्षत्रियके	डाला।
बलको धिक्कार है। ब्रह्मतेजसे प्राप्त होनेवाला बल ही	वसिष्ठजीको यह बात मालूम हुई। फिर भी उन्होंने
वास्तवमें बल है; क्योंकि आज एक ब्रह्मदण्डने मेरे सारे	अपने शोकके वेगको वैसे ही धारण कर लिया, जैसे
अस्त्र नष्ट कर दिये।'	पर्वतराज सुमेरु पृथ्वीको। उन्होंने प्रतीकारकी समर्थ्य
धिग् बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्।	होनेपर भी उनसे किसी प्रकारका बदला नहीं लिया।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे॥	राजा त्रिशंकुका यज्ञ सम्पन्न हुआ। यज्ञमें अपना-
तदनन्तर विश्वामित्र महात्मा वसिष्ठके साथ बैर	अपना भाग ग्रहण करनेके लिये विश्वामित्रजीने देवताओंका
बाँधकर ब्राह्मणत्वकी प्राप्तिके लिये अपनी रानीके साथ	आवाहन किया, पर देवगण नहीं आये। इसपर क्रुद्ध
दक्षिण दिशामें जाकर भयंकर तपस्या करने लगे। एक	होकर विश्वामित्रजीने अपने तपोबलसे त्रिशंकुको सशरीर
हजार वर्ष पूरे हो जानेपर ब्रह्माजीने प्रकट होकर कहा—	स्वर्ग भेज दिया। किंतु स्वर्गके अधिकारी न होनेके
'कुशिकनन्दन! तुमने तपस्याके द्वारा राजर्षियोंके लोकोंपर	कारण (सृष्टिके नियमानुसार मृत्युलोकमें प्राप्त शरीरके
विजय पायी है। इस तपस्याके प्रभावसे हम तुम्हें सच्चा	साथ कोई स्वर्ग नहीं जा सकता) इन्द्रने त्रिशंकुको नीचे
राजर्षि समझते हैं।' किंतु विश्वामित्र तो ब्रह्मर्षि पद	गिरा दिया। वे विश्वामित्रको पुकारते हुए नीचे गिरने
चाहते थे, अतः वे पुनः तपस्या करने लगे।	लगे। मुनिने उनकी पुकार सुनकर उन्हें वहीं रोक दिया
इसी बीच इक्ष्वाकुवंशमें त्रिशंकु नामके यशस्वी	और वे वहीं औंधे मुँह लटके रह गये। उनके मुँहसे
राजा हुए। वे ऐसा यज्ञ करना चाहते थे, जिससे वे	गिरनेवाली लारसे कर्मनाशा नामकी नदी बन गयी, जो
सशरीर स्वर्ग जा सकें। किंतु जब उनके राजगुरु विसष्ठ	वर्तमानमें वाराणसी-बिहारकी सीमाके निकट है। मान्यता
मुनिने इसे असम्भव बताया तो वे उनके पुत्रोंके पास	है कि उसके जलका स्पर्श होनेसे पुण्य नष्ट हो जाते
जाकर यही प्रार्थना करने लगे। गुरुकी अवज्ञा करके	हैं। तदुपरान्त विश्वामित्रजीने नयी सृष्टिका निर्माण
अन्यको याजक बनानेकी बातसे गुरुपुत्रोंने उन्हें चाण्डल	करनेके लिये नये सप्तर्षियों, नक्षत्रों और देवताओंका
हो जानेका शाप दे दिया। फलत: रात बीतते ही त्रिशंकु	निर्माण करना आरम्भ किया। इससे घबड़ाकर देवताओंने
चाण्डाल हो गये, उनका शरीर नीला हो गया और सब	आकर मुनिसे विनयपूर्वक कहा कि त्रिशंकु स्वर्गके
अंगोंमें रूखापन आ गया। उनका यह रूप देख उनके	अधिकारी नहीं हैं। मुनिने कहा कि मैं उन्हें सशरीर
मन्त्री और पुरवासी, जो उनके साथ आये थे, उन्हें	स्वर्गमें भेजनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, अत: आप मेरेद्वारा

भाग ९४ सृजित नक्षत्रोंको सदा बना रहनेका अनुमोदन करें। कहा—'भगवन्! यदि अपने द्वारा उपार्जित शुभ कर्मोंके देवताओंने तथास्तु कहकर कहा कि आपके द्वारा सृजित फलसे मुझे आप ब्रह्मर्षिका अनुपम पद प्रदान कर सकें तो मैं अपनेको जितेन्द्रिय समझूँगा। ब्रह्माजीने कहा— नक्षत्र आकाशमें सदैव प्रकाशित होंगे, उनके ही बीचमें त्रिशंकु भी प्रकाशमान रहेंगे। इनकी स्थिति देवगणोंके 'मुनिश्रेष्ठ! अभी तुम जितेन्द्रिय नहीं हुए हो। इसके लिये प्रयत्न करो।' विश्वामित्र पुनः घोर तपस्यामें लग समान होगी और ये सभी नक्षत्र इनका अनुसरण करेंगे। तदनन्तर देवता, मुनि विश्वामित्रकी स्तुतिकर विदा हो गये। वे दोनों भुजाएँ ऊपर उठाये बिना किसी आधारके गये। महातेजस्वी विश्वामित्र अब पश्चिम दिशामें खड़े होकर वायु पीकर रहते हुए तपमें संलग्न हो गये। ब्रह्माजीद्वारा निर्मित पुष्करमें चले गये और वहाँ उग्र एवं गर्मीके दिनोंमें पंचाग्निका सेवन करते, वर्षाकालमें खुले दुर्जय तपस्या करने लगे। पुष्करतीर्थमें एक हजार आकाशके नीचे रहते और जाडेके समय रात-दिन वर्षोंतक तीव्र तपस्या करनेपर सम्पूर्ण देवता उन्हें पानीमें खड़े रहते थे। इस प्रकार उन्होंने एक हजार तपस्याका फल देनेकी इच्छासे ब्रह्माजीके साथ आये। वर्षोंतक घोर तपस्या की। उन्हें तपस्या करते देख ब्रह्माजीने कहा—'मुने! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम देवताओं और इन्द्रके मनमें बड़ा भारी सन्ताप हुआ। अपने द्वारा उपार्जित शुभकर्मींके प्रभावसे ऋषि हो गये। इन्द्रने रम्भा अप्सराको बुलाकर विश्वामित्रमुनिको मोहित ऐसा कहकर ब्रह्माजी पुनः स्वर्गको चले गये। मुनि करनेके लिये कहा। रम्भाने कहा—'सुरपते! महामुनि विश्वामित्र भी पुन: बड़ी भारी तपस्यामें लग गये। इसके विश्वामित्र बड़े भयंकर हैं। देव! इसमें सन्देह नहीं कि पश्चात् बहुत समय बीतनेपर इन्द्रद्वारा भेजी गयी परम ये मुझपर भयानक क्रोधका प्रयोग करेंगे।' इन्द्रने सुन्दरी अप्सरा मेनका पुष्करमें आयी और विश्वामित्रमुनिको कहा—'डरो मत! मैं भी कामदेवके साथ तेरे पास मोहित करने लगी। विश्वामित्रजी कामके अधीन हो रहूँगा। सुन्दरी अप्सराने परम उत्तम रूप बनाकर विश्वामित्रको गये। उनकी तपस्यामें विघ्न आ गया। मेनकाने लुभाना आरम्भ किया। मुनिको देवराजका कुचक्र विश्वामित्रजीके साथ उस आश्रममें दस वर्ष बिताये। समझमें आ गया। उन्होंने क्रोधमें भरकर रम्भाको शाप देते हुए कहा—'दुर्भगे रम्भे! मैं काम और क्रोधपर महामुनि विश्वामित्र जब कामजनित मोहसे जागे तो पश्चात्ताप करने लगे। मेनका भयभीत हो थर-थर विजय पाना चाहता हूँ और तू आकर मुझे लुभाती है। कॉॅंपती हुई हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ी हो गयी। अतः इस अपराधके कारण तू दस हजार वर्षीतक उसकी ओर देख्कर विश्वामित्रजीने मधुर वचनोंद्वारा उसे पत्थरकी प्रतिमा बनकर खडी रहेगी। शापका समय पुरा विदा कर दिया और स्वयं उत्तरमें स्थित हिमालयकी हो जानेके बाद एक महान् तेजस्वी और तपोबलसम्पन्न ओर चले गये। वहाँ उन महायशस्वी मुनिने निश्चायात्मक ब्राह्मण (ब्रह्माजीके पुत्र विसष्ठ) मेरे क्रोधसे कलुषित बुद्धिका आश्रय लेकर कामदेवको जीतनेके लिये कौशिकी तेरा उद्धार करेंगे।' मुनिके उस महाशापसे रम्भा तत्काल तटपर जाकर दुर्जय तपस्या की। एक हजार वर्षींतक पत्थरको प्रतिमा बन गयो। महर्षिका वह शापयुक्त वचन तपस्या करनेके पश्चात् प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उन्हें सुनकर कन्दर्प और इन्द्र वहाँसे खिसक गये। पुन: दर्शन दिये और उन्हें महर्षिकी पदवी प्रदान की क्रोधसे मुनिकी तपस्याका क्षय हो गया और और कहा—'महर्षे! तुम्हारा स्वागत है। वत्स कौशिक! इन्द्रियाँ भी काबूमें न रह सकीं। यह विचारकर मैं तुम्हारी उग्र तपस्यासे बहुत सन्तुष्ट हूँ और तुम्हें महातेजस्वी मुनि अशान्त हो गये। उन्होंने निश्चय किया

Hindhisan Diagraph Sperrantias://dag.gg/dhartiga h. MARE WIJUH ON Early as winash/Sh

'अबसे न तो क्रोध करूँगा और न किसी भी अवस्थामें

महत्ता एवं ऋषियोंमें श्रेष्ठता प्रदान करता हूँ।'

पंख्या ६] महाराज विश्वामित्र	ı—राजर्षिसे ब्रह्मर्षि

नहीं लूँगा। इन्द्रियोंको जीतकर इस शरीरको सुखा	करनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठमुनिको प्रसन्न किया। इसके
डालूँगा। जबतक अपनी तपस्यासे उपार्जित ब्राह्मणत्व	बाद ब्रह्मर्षि वसिष्ठने 'एवमस्तु' कहकर विश्वामित्रका
मुझे प्राप्त नहीं होगा, तबतक चाहे अनन्त वर्ष बीत	ब्रह्मर्षि होना स्वीकार कर लिया और उनके साथ
जायँ, मैं बिना खाये-पीये खड़ा रहूँगा और साँसतक न	मित्रता स्थापित कर ली। इस प्रकार ब्राह्मणत्व प्राप्त
लूँगा।' ऐसा निश्चय करके मुनिवरने पुनः एक हजार	करके धर्मात्मा विश्वामित्रजीने ब्रह्मर्षि वसिष्ठका पूजन
वर्षोंतक तपस्याकी दीक्षा ग्रहण की और पूर्व दिशाकी	किया।
ओर अत्यन्त कठोर तपस्या करने चले गये।	इस सम्बन्धमें ऐसा भी एक दृष्टान्त आता है कि
एक हजार वर्षोंके तपके पूर्ण होनेपर वे महान्	एक दिन रात्रिमें छिपकर विश्वामित्र जब वसिष्ठजीको
व्रतधारी महर्षि व्रत समाप्त करके अन्न ग्रहण करनेको	मारने आये, तब उन्होंने सुना कि एकान्तमें वसिष्ठ
तैयार हुए। इसी समय इन्द्रने ब्राह्मणवेषमें आकर उनसे	अपनी पत्नीसे कह रहे हैं—'इस सुन्दर चाँदनी रातमें तप
तैयार अन्नकी याचना की। तब उन्होंने वह सारा तैयार	करके भगवान्को सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न तो विश्विमत्र-
किया हुआ भोजन उस ब्राह्मणको दे दिया। महातपस्वी	जैसे बड़भागी ही करते हैं।' शत्रुकी एकान्तमें भी प्रशंसा
भगवान् विश्वामित्र बिना खाये-पीये ही रह गये। फिर	करनेवाले महापुरुषसे द्वेष करनेके लिये विश्वामित्रको
भी उन्होंने उस ब्राह्मणसे कुछ कहा नहीं। अपने मौन	बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे शस्त्र फेंककर महर्षिके
व्रतका यथार्थरूपसे पालन किया। इसके बाद उन्होंने	चरणोंपर गिर पड़े। वसिष्ठजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया
पुन: पहलेकी ही भाँति श्वास–उच्छ्वाससे रहित मौनव्रतका	और ब्रह्मर्षि स्वीकार किया।
अनुष्ठान पूरे एक हजार वर्षोंतक किया। उनकी तपस्यासे	ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। उनकी
तीनों लोकोंके प्राणी घबरा गये। सारी प्रकृति सन्तप्त हो	पत्नीका नाम अरुन्धती है। काम और क्रोध नामक
उठी । प्रलयका–सा वातावरण बन गया । तदनन्तर ब्रह्मा	दोनों शत्रु जिन्हें देवता भी नहीं जीत सके, वे
आदि सब देवता महात्मा विश्वामित्रके पास जाकर	वसिष्ठजीकी तपस्यासे पराजित होकर उनके चरण
मधुर वाणीसे बोले—'ब्रह्मर्षे! तुम्हारा कल्याण हो।	दबाते हैं। इन्द्रियोंको वशमें करनेके कारण वे वसिष्ठ
तुमने अपनी उग्र तपस्यासे ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया	कहलाते हैं। इन्द्रियोंको वशमें करना, मनका निग्रह
है।' पितामह ब्रह्माकी यह बात सुनकर महामुनि	करना—यही ब्रह्मतेज प्राप्त करनेका अमोघ उपाय है।
विश्वामित्रने अत्यन्त प्रसन्न होकर सम्पूर्ण देवताओंको	काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या, मोह, मान, बड़ाई
प्रणाम किया और कहा—'देवगण! यदि मुझे ब्राह्मणत्व	आदि शत्रुओंको पराभूतकर उन्हें सर्वथा अपने अधीन
मिल गया और दीर्घ आयुकी भी प्राप्ति हो गयी तो	रखना तथा समस्त शक्तियोंको आत्म-साक्षात्कारकी
ॐकार, वषट्कार और चारों वेद स्वयं आकर मेरा	दिशामें लगा देना ही परब्रह्म परमेश्वरकी प्राप्तिका
वरण करें। इसके सिवाय जो क्षत्रियवेद (धनुर्वेद	उपाय है। जो पद वसिष्ठमुनिने प्राप्त किया था, उसे
आदि) तथा ब्रह्मवेद (ऋक् आदि चारों वेद)-के	अपने कठोर पुरुषार्थ एवं तपस्याके द्वारा महाराज
ज्ञाताओंमें भी सबसे श्रेष्ठ है; वे ब्रह्मापुत्र वसिष्ठ स्वयं	विश्वामित्रने भी प्राप्त कर दिखा दिया।
आकर मुझसे ऐसा कहें कि 'तुम ब्राह्मण हो गये।'	इन्होंने गायत्री-साधनाद्वारा काम, क्रोध, लोभ,
यदि ऐसा हो जाय तो मैं समझूँगा कि मेरा उत्तम	मोह आदि शत्रुओंको जीत लिया तथा तपस्याके मूर्तिमान्
मनोरथ पूर्ण हो गया। तब देवताओंने मन्त्रजाप	
- `	

संकीर्तनसे रोगमुक्ति

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)

आयुर्वेदीय साहित्यमें रोगोंका वर्गीकरण दो प्रकारसे चिन्तन तथा धर्मशास्त्रके पठनको विशेष स्थान प्रदान किया गया है—दृष्टापचारज एवं अदृष्टापचारज। इस किया है। इस प्रकार देवार्चन या संकीर्तनसे दीर्घायु,

जन्ममें किये गये कर्मोंसे उत्पन्न रोग दृष्टापचारज तथा पूर्वजन्मकृत कर्मोंके कारण उत्पन्न रोग अदृष्टापचारज

कहलाते हैं। इस प्रकार सभी सांसारिक सुख शुभकर्मों के

कारण तथा दु:ख अशुभकर्मोंके कारण प्राप्त होते हैं।

शरीर भी दो प्रकारके होते हैं—स्थूल शरीर एवं सुक्ष्म शरीर। सूक्ष्म या लिंग शरीर पूर्वजन्मकृत शुभाशुभ कर्मोंको

पुनर्जन्म होनेपर स्थूल शरीरमें ला देते हैं तथा शुभाशुभ फलोंको भोगते हैं। पूर्वजन्मकृत कर्मोंको दैव या प्रारब्ध

तथा इस जन्मके कर्मोंको पुरुषार्थ या प्रयत्न कहा जाता है। आयुर्वेदानुसार जन्मान्तरमें किये हुए पाप जीवोंको रोगके रूपमें पीड़ित करते हैं, उनका शमन औषध, दान,

जप, देवार्चन (संकीर्तन) एवं हवनसे होता है— जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते। तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः

इस चिकित्साको 'दैवव्यपाश्रय' चिकित्सा कहा

जाता है। इसमें दैवकी शान्ति एवं निराकरण-हेतु मणि, मन्त्र, जप, कीर्तन, हवन, मंगलकर्म एवं यम-नियमोंका

प्रयोग किया जाता है। संकीर्तन शब्द देवोपासनासे सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओंको निरूपित करता है। इसमें स्तुति, नामोच्चारण, गुणगान, जप, भजन, अर्चन, कथा,

सुक्तपाठ, स्वस्तिवाचनादिका समावेश है। उपर्युक्त माध्यमसे किसी भी साधनसे किया गया ईश्वराराधन संकीर्तन कहलाता है। संकीर्तनसे स्वास्थ्यका उन्नयन तथा रोगका

भी निराकरण होता है। स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यकी रक्षाके हेतु रसायन-चिकित्साका विधान है। शरीरकी रसादि धातुएँ जिससे

उत्तम रूपमें बनती रहें, शरीर स्वस्थ रहे तथा अकाल,

जरा एवं व्याधि जिस उपायसे दूर रहे, उसे रसायन कहते

हैं। महर्षि चरकने रसायन-प्रकरणमें आचार-रसायनका निरूपण किया है। सदाचारके परिपालनसे व्यक्ति बिना

औषधके ही रसायनके सभी गुण प्राप्त कर लेता है।

आचार्यने आचार-रसायनमें जप, देवपूजन, अध्यात्म-

स्मरणशक्ति, मेधा, आरोग्य, तरुणावस्था, कान्ति, वचनसिद्धि, नम्रता एवं शरीरमें उत्तम बलकी प्राप्ति होती है। आयुर्वेद-वाङ्मयमें पद-पदपर देवोपासनद्वारा रोग-

> मुक्ति प्रतिपादित की गयी है। चरकसंहिताकी टीकामें आचार्य चक्रपाणिदत्तने अधिकारपूर्वक उद्घोषित किया है कि अच्युत, अनन्त और गोविन्द-नामका उच्चारण सर्वरोगोंका विनाश करता है—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ वैद्यक ग्रन्थोंमें स्पष्ट आदेश है कि औषधको

निश्चित प्रभावकारी एवं चमत्कारी बनाने-हेतु उसके संचय और निर्माण-कालमें निम्नाङ्कित नामोंका कीर्तन

करें — अच्युतं चामृतं चैव जपेदौषधकर्मणि। यजुर्वेदमें सुक्तपाठ और ईश्वरोपासनासे मनोरोगोंके कारणभूत रज एवं तम दोषका निवारण उल्लिखित है।

महर्षि आत्रेयके मतानुसार स्वस्तिवाचन और मन्त्रजपसे उन्माद तथा अपस्मार रोगकी निवृत्ति होती है। विषमज्वर (मलेरिया) दूर करने-हेतु शिव-पार्वतीकी पूजाको औषधस्वरूप निगदित किया गया है। चरकसंहितामें

ज्वर-चिकित्साके प्रसंगमें विष्णुसहस्रनामके पाठको सर्वज्वरहर निरूपित किया गया है— स्तुवन् नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति। महर्षि सुश्रुतने ग्रहबाधामें नाम-जप तथा अपस्मारमें

शिव-पूजनको रोगापहर्ता सिद्ध किया है। काश्यपसंहितामें शिशुओंको भूतावेशसे बचाने-हेतु विभिन्न जप करनेका

आदेश दिया है। आचार्य वाग्भटने अपने ग्रन्थ 'अष्टाङ्ग-हृदय'में स्पष्ट किया है कि भगवान् शिव और गणेशकी आराधनासे कुष्ठरोग दूर होते हैं। वाग्भट भी अपने

पूर्ववर्ती आचार्योंके इस मतसे सहमत थे कि कर्मज

व्याधियोंका नाश जपसे होता है। वैद्य बंगसेनने जरारोग और अकालमृत्युके निवारणार्थ 'हरं गौरीं प्रपूजयेत्'— ऐसा आदेश दिया है। नामसंकीर्तन-हेतु कतिपय स्थानोंपर स्पष्ट रूपसे उपदेश दिया गया है-विनष्ट करता है— युक्तोऽतिसारी स्मर तु प्रसह्य गोविन्दगोपालगदाधरेति। केशवं पुण्डरीकाक्षमिनशं हि तथा जपेत्। नेत्रबाधासु घोरासु ॥ 'अतिसारग्रस्त रोगीको गोविन्द, गोपाल और गदाधर नामोंका स्मरण करना चाहिये।' धर्मप्राण भारतवर्षमें आदिकालसे ही संकीर्तनका कुछ रोग जनपदोद्ध्वंस (महामारी)-के रूपमें फैलते अत्यधिक महत्त्व रहा है। नैत्यिक संकीर्तन मनोह्रास, हैं। फलत: असंख्य प्राणी कालके गालमें समाहित हो अवसाद तथा विभाजित मानसिकताका निराकरण करनेमें जाते हैं। महर्षि आत्रेयने उसका कारण वायु, जल, देश औषधस्वरूप है। वर्तमान भौतिक जीवनके ऊहापोहमें और कालकी विकृति बतलाया है। इन चारोंकी विकृतिको संकीर्तनका प्रयोग मनोवैज्ञानिक चिकित्साका काम करता दूर करने-हेतु महर्षिने सत्कथा, देवार्चन तथा जपादिक है। संकीर्तन सांसारिक दु:खोंकी निवृत्ति तथा सच्चिदानन्दकी सुकृत्योंको प्रशस्त कहा है। आयुर्वेदेतर सभी धार्मिक प्राप्तिका अव्यर्थ साधन है। पाश्चात्य वैज्ञानिक निश्चित ग्रन्थोंमें भी संकीर्तनसे सर्वरोगोंका विनष्ट होना प्रतिपादित शब्दोंकी बार-बार कर्णेन्द्रियमें प्रविष्टि करके कुछ रोगोंका शमन करनेमें सक्षम सिद्ध हुए हैं। राम एवं किया गया है। राधासहस्रनामका पठन हिचकी, वमन, मृत्ररोग, ज्वर, अतिसार और शूलका शमन करता है— कृष्ण शब्दोंका सतत उच्चारण विषाणुग्रस्त रक्तके निर्विषीकरणमें सहायक पाया गया है। भारतमें ही नहीं, हिक्कारोगं तथा छर्दिं मूत्रकृच्छुं तथा ज्वरम्। अतिसारं तथा शूलं शमयेत् पठनादिप॥ विश्वके अनेक देशोंमें चल रही भगवन्नामसंकीर्तनकी लहर विभिन्न मानसिक और शारीरिक रोगोंको शान्त श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णित गोपीगीतका करनेमें सफल हुई है। संकीर्तनके अलौकिक प्रभावसे दैहिक, दैविक और पाठ हृदयसम्बन्धी रोगोंको दूर करता है—'हृद्रोगमाश्व-पहिनोत्यचिरेण धीर:।' विषविकार दूर करनेमें विभिन्न भौतिक संताप नष्ट होकर सुख,शान्ति तथा समृद्धिकी मन्त्रोंका चमत्कारिक प्रभाव लोकसिद्ध है। गरुडध्वजके अभिवृद्धि होती है। वृहद्विष्णुपुराणमें इसी तथ्यको नामका कीर्तन तथा श्रवण सर्पदंश, वृश्चिकदंश, ज्वर निम्नरूपमें अभिव्यक्त किया गया है— और शिरोरोगका शमन करता है। सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्। केशव तथा पुण्डरीकाक्ष नामोंका संकीर्तन नेत्ररोगोंको शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम्॥ संकोर्तनकी महिमा संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि प्ंसाम्। चित्तं विधुनोत्यशेषं तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥ यथा जिनकी महिमा सर्वत्र विश्रुत (प्रसिद्ध) है, उन भगवान् अनन्तका जब कीर्तन किया जाता है, तब वे उन कीर्तन-परायण भक्तजनोंके चित्तमें प्रविष्ट हो उनके सारे संकटको उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं, जैसे सूर्य अन्धकारको और आँधी बादलोंको। आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता घोरेषु च व्याधिषु वर्त्तमानाः। विमुक्तदु:खाः

पीड़ित, विषादग्रस्त, शिथिल, भयभीत तथा भयानक रोगोंमें पड़े हुए मनुष्य भी एकमात्र नारायण-नामका कीर्तन

सुखिनो भवन्ति॥

नारायणशब्दमेकं

करके समस्त दु:खोंसे छूटकर सुखी हो जाते हैं।

संकोर्तनको महिमा

संख्या ६]

दोष कैसे दूर हों?

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

प्राणीके अन्त:करणमें जिन दोषोंके कारण अशुद्धि रुकावट नहीं डालती, वरं सहायता ही करती रहती है।

या मिलनता है, वे दोष कहीं बाहरसे आये हुए नहीं हैं, कोई भी व्यक्ति या समाज किसीके साधनमें बाधा नहीं स्वयं उसीके बनाये हुए हैं। अत: उनको निकालकर डाल सकता। कोई भी परिस्थिति ऐसी नहीं है, जिसका

अन्त:करणको शुद्ध बनानेमें यह सर्वथा स्वतन्त्र है।

मनुष्य सोचता है और कहता है कि 'मेरे प्रारब्ध

ही कुछ ऐसे हैं, जो मुझे भगवान्की ओर नहीं लगने

देते, मुझपर भगवानुकी कृपा नहीं है। आजकल समय

बहुत खराब है। सत्संग नहीं है। आसपासका वातावरण

अच्छा नहीं है। शरीर ठीक नहीं रहता। परिवारका सहयोग नहीं है। अच्छा गुरु नहीं मिला। परिस्थित

अनुकूल नहीं है। एकान्त नहीं मिलता। समय नहीं मिलता' आदि, इसी प्रकारके अनेक कारणोंको वह ढूँढ लेता है, जो उसे अपने आध्यात्मिक विकासमें रुकावट

डालनेवाले प्रतीत होते हैं। और इस मिथ्या धारणासे या तो वह अपनी उन्नतिसे निराश हो जाता है या इस

प्रकारका सन्तोष कर लेता है कि भगवान्की जैसी इच्छा, वे जब कृपा करेंगे, तभी उन्नति होगी। परंतु वह अपनी असावधानी तथा भूलकी ओर नहीं देखता। साधकको सोचना चाहिये कि जिन महापुरुषोंने

भगवान्की इच्छापर अपनेको छोड़ दिया है, उनके जीवनमें क्या कभी निरुत्साह और निराशा आती है?

क्या वे किसी भी परिस्थितिमें भगवानुके सिवा किसी व्यक्ति या पदार्थको अपना मानते हैं? उनके मनमें क्या किसी प्रकारकी भोग-वासना शेष रहती है? यदि नहीं,

तो फिर अपने बनाये हुए दोषोंके रहते भगवान्की इच्छाका बहाना करके अपने मनमें झुठा सन्तोष मानना

या आध्यात्मिक उन्नतिमें दूसरे व्यक्ति, परिस्थिति आदिको

बाधक समझना अपने-आपको और दूसरोंको धोखा देनेके सिवा और क्या है? यह सोचकर साधकको यह निश्चय करना चाहिये सदुपयोग करनेपर वह साधनमें सहायक न हो। भगवान्की कृपाशक्ति तो सदैव सब प्राणियोंके हितमें लगी हुई है।

[भाग ९४

जब कभी मनुष्य उसके सम्मुख हो जाता है, उसी समय उसका हृदय भगवान्की कृपासे भर जाता है। साधकको चाहिये कि उसका अपना बनाया हुआ

जो यह महान् दोष है कि जिनसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं है, जो किसी प्रकार भी अपने नहीं हो सकते, उन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके संघातरूप शरीरको और उससे

सम्बन्धित पदार्थोंको अपना मान लिया है तथा जिनपर किसी प्रकार भी विश्वास नहीं करना चाहिये. उनपर विश्वास कर लिया है एवं जिन परम सुहृद् परमेश्वरपर विश्वास करना चाहिये, जो सब प्रकारसे विश्वासके

योग्य हैं और सजातीय होनेके नाते जो सचमुच सब प्रकारसे अपने हैं, उनपर न तो विश्वास करता है न उन्हें अपना मानता है और न वर्तमानमें उनकी आवश्यकताका ही अनुभव करता है। यही एक ऐसा महान् दोष है,

होते रहते हैं। अत: इस दोषका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। यह दोष मनुष्यका अपना बनाया हुआ है। इसलिये

स्वयं ही इसे दूर करना पडेगा। अपने बनाये हुए दोषको दूर करनेमें कोई भी साधक असमर्थ नहीं हो सकता। इसपर भी यदि उसे अपनी कमजोरीका भान हो, यदि

वह अपनेको सचमुच असमर्थ समझता हो तो उसे निर्बलताके दु:खसे दुखी होकर उस सर्वसमर्थ प्रभुकी शरणमें जाना चाहिये, जो निर्बलोंके बल हैं, पतितोंको

जिससे सब प्रकारके बड़े-बड़े दोष उत्पन्न हुए हैं और

पवित्र बनानेवाले और दीनबन्धु हैं। निर्बलताके दु:खसे कि भगवान्की प्रकृति जो कि जगत्-माता है, उसका दुखी साधकको उस निर्बलताका नाश होनेसे पहले चैन Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shafault सदेव हितकर ही होती है, वह फिसीक विकासमें कैसे पड़ सकता है?

संख्या ६] दोष कैसे	दूर हों ? ३५
दूसरोंकी आलोचना करते समय प्राणीके मनमें ऐसे	शक्तियोंका दुरुपयोग करनेवालोंको दण्ड नहीं देते। यदि
भाव उठा करते हैं कि 'अमुक आचार्यने अमुक भूल	न्याय करते तो झूठ बोलनेवालोंकी जीभ उसी समय काट
की, जिससे उनके अनुयायियोंका विकास नहीं हुआ।	डालते। चोरी करनेवालोंके हाथ काट डालते; परंतु ऐसा
अमुक नेतामें यह गलती है, अमुक समाजमें यह दोष	नहीं करते। वे तो सदा प्राणीपर कृपा करते हैं और इस
है। अमुक साधक यह भूल करता है। अमुक समुदायके	बातके लिये उत्सुक रहते हैं कि यह किसी प्रकार मुझपर
लोग इस अंशमें भूल करते हैं। हिन्दुओंकी अमुक गलती	विश्वास करके एक बार ऐसा मान ले कि 'मैं तेरा हूँ।'
है। अंग्रेजोंकी अमुक भूलें हैं। मुसलमानोंने अमुक गलती	जिनका चरित्र सुननेमात्रसे कामका सर्वथा नाश हो
की।' इस प्रकार वह सबके दोषोंका बड़ी चतुराईके साथ	जाता है, जिनके कृपा-कटाक्षसे प्रेम प्राप्त होता है,
निरीक्षण करता है। उस समय सारे जगत्की बुद्धि एकत्र	जिनकी चरण-रजके लिये उद्भव-सरीखे तत्त्ववेता भी
होकर उसमें आ जाती है। पर वही मनुष्य अपनी उस	चाह करते हैं—उन गोपीजनोंके चरित्रसे भी साधकको
बुद्धिको अपने दोषोंके देखनेमें नहीं लगाता। यदि वह	यही शिक्षा मिलती है कि एकमात्र प्रभुको ही अपना
दूसरोंके उन दोषोंको देखना छोड़ दे; जो वास्तवमें उन	मानना चाहिये; क्योंकि वे एकमात्र श्यामसुन्दरको ही
लोगोंमें हैं कि नहीं, कहा नहीं जा सकता तथा उस	अपना मानती थीं। उन्होंने अपने-आपको भगवान्के
स्वभावको छोड़कर अपने दोषोंको देखनेमें अपनी	समर्पण कर दिया था। उनका मन भगवान्का मन हो
बुद्धिका प्रयोग करे और जो दोष समझमें आ जायँ,	गया था। उनकी आँखें भगवान्की हो गयी थीं। उनकी
उनको छोड़ता चला जाय तो शीघ्र ही उसका चित्त शुद्ध	वाणी, प्राण और शरीर सब भगवान्के थे। वे अपने
हो सकता है। साधकको चाहिये जो अपना नहीं है, जो	सम्बन्धियों और गायोंको तथा समस्त पदार्थोंको भगवान्का
विश्वासके योग्य नहीं है, उसको अपना मानना, उसपर	ही समझती थीं। वे जो कुछ भी करती थीं, भगवान्की
विश्वास करना छोड़ दे। जो अपनेको अनेक बार धोखा	प्रसन्नताके लिये, भगवान्को सुख पहुँचानेके लिये ही
दे चुके हैं, उनका फिर कभी विश्वास न करे। कभी	करती थीं। उनकी प्रत्येक प्रवृत्तिमें भगवान्की प्रसन्नताका
किसी भी परिस्थितिमें उनको अपना न समझे। एवं जो	उद्देश्य रहता था।
प्रभु अनादिकालसे अपने साथी हैं, जो सदा ही उसके	अतएव साधकको चाहिये कि वह जो कुछ करे,
हितमें लगे हैं, जिनके साथ साधकका नित्य सम्बन्ध है,	अपने प्रेमास्पदकी प्रसन्नताके लिये ही करे। और तो क्या,
जिन्होंने कभी किसीको धोखा नहीं दिया; वेद-शास्त्र	भोजन करे तो इसलिये कि मेरे न खानेसे मेरे प्रेमास्पदको
और सन्तलोग तथा अपना अनुभव भी जिसका साक्षी	कष्ट न हो जाय। भूखा रहे तो इसीलिये कि आज मेरे
है, उन परम सुहृद् प्रभुपर विकल्परहित विश्वास करके	प्रेमास्पद इसीमें प्रसन्न हैं, इसलिये उन्होंने मुझे भोजन
उनको अपना मान ले—यही साधकका परम पुरुषार्थ है।	करनेका मौका नहीं दिया। इसी प्रकार हर एक प्रवृत्तिमें
जो दोष अपने बनाये हुए हैं, उनको कोई दूसरा	भगवान्की प्रसन्नताका अनुभव करता हुआ सदा उनसे
मिटा देगा, ऐसी आशा करना तथा उनको मिटानेसे	प्रेम बढ़ाता रहे या उनकी प्रेमप्राप्तिकी बाट जोहता रहे।
निराश होना—ये दोनों ही बातें उचित नहीं हैं; क्योंकि	साधकको अपना जीवन सर्वथा भगवान्के समर्पण
ये स्वाभाविक नियमके विरुद्ध हैं।	कर देना चाहिये। उसकी ऐसी सद्भावना होनी चाहिये
लोग कहते हैं कि 'भगवान् न्यायकारी हैं' परंतु	कि 'मेरा जीवन भगवान्के लिये है। मुझे उनका न
साधकको तो यही समझना चाहिये कि 'वे तो सदैव दया	होकर एक क्षणभर भी नहीं जीना है। भगवान् मुझे
करनेवाले हैं।' यही कारण है कि वे अपनी दी हुई	अपना मानें चाहे न मानें, पर मैं कभी किसी दूसरेका

भाग ९४ होकर नहीं रहूँगा।' ऐसा कुछ नहीं करना पड़ता, बल्कि अपने-आप यदि साधकके मनमें यह भाव आये कि भगवानुको अनायास ही प्रत्येक अवस्थामें स्वत: प्रेम हो जाता है। मैं जानता नहीं, मैंने उनको कभी देखा नहीं तो बिना देखे साधकको चाहिये कि प्रतिदिन शयनके पूर्व भलीभाँति और बिना जानकारीके उनपर कैसे विश्वास किया जाय अपने सारे दिनके जीवनका प्राप्त विवेकके द्वारा निरीक्षण और उनको कैसे अपना माना जाय तो अपने मनको करे अर्थात् किन-किन दोषोंका किन-किन कारणोंसे समझाना चाहिये कि तू जिन-जिनपर विश्वास करता है कितनी बार दिनभरमें मुझपर आक्रमण हुआ। उस और जिनको अपना मानता है, क्या उन सबको जानता निरीक्षणसे जो असावधानी समझमें आये, उसे त्यागनेका है ? विचार करनेपर मालूम होगा कि नहीं जानता तो भी दृढ़ संकल्प करे और उस दोषके विपरीत भावकी विश्वास करता है और उनको अपना मानता है और अपनेमें स्थापना करे। यदि मिथ्या बोल दिया हो तो जिस जिनको भलीभाँति जान लेनेके बाद न तो वे विश्वास प्रलोभनसे वह दोष हुआ है, उसकी तुलना सत्य-करनेयोग्य हैं और न वे किसी प्रकार भी अपने हैं, उनमें भाषणकी महिमाके साथ करके अपने मनको समझाये जो विश्वास तथा अपनापन है, वह तभीतक है जबतक ताकि पुन: वह किसी प्रकारके प्रलोभनसे आकर्षित न उनकी वास्तविकताका ज्ञान नहीं है; परंतु भगवान् ऐसे हो तथा यह संकल्प करे कि 'मैं मिथ्यावादी नहीं हूँ। नहीं हैं। उनको अपना माननेवाला और उनपर विश्वास अब कभी भी मैं झूठ नहीं बोलूँगा।' इसी प्रकार काम, करनेवाला मनुष्य जैसे-जैसे उनकी महिमाको जानता है, क्रोध आदि हर एक दोषोंके विषयमें समझना चाहिये। वैसे-वैसे उसका विश्वास और प्रेम नित्य नया बढ़ता प्रात: उठनेके पश्चात् जिस-जिस कार्यमें प्रवृत्त हो, जाता है; क्योंकि वे विश्वास करनेयोग्य हैं और सचम्च उससे पूर्व विवेकपूर्वक भलीभाँति निर्णय कर ले कि मेरे द्वारा जो कार्य होने जा रहा है, उससे किसीका अहित अपने हैं। जिस साधकका ऐसा निश्चय हो कि 'मैं तो पहले या किसीके अधिकारका अपहरण तो नहीं हो रहा है। जानकर ही मानूँगा, बिना जाने नहीं मानूँगा, तो उसे चाहिये जिन कार्योंमें दूसरोंका हित, उनके अधिकारकी रक्षा कि जिन-जिनपर उसने बिना जाने विश्वास कर लिया है निहित हो, उन कार्योंसे कर्तामें शुद्धि आती है और और उन्हें अपना मान रखा है, उन सबकी मान्यताको परस्परमें स्नेहकी एकता सुदृढ़ हो जाती है। हृदय प्रीतिसे सर्वथा निकाल दे। किसीको भी बिना जाने न माने। ऐसा भर जाता है। साधक किसीका ऋणी नहीं रहता। ऐसा करनेसे भी उसका अपना बनाया हुआ दोष नाश होकर होनेपर साधकके जीवनमें स्वाधीनता आ जाती है। उसे चित्त शुद्ध हो जायगा। तब उस प्राप्त करनेयोग्य तत्त्वको प्रेम, विवेक और योगकी प्राप्ति होती है, जो मानव-जीवनका लक्ष्य है; क्योंकि प्रेमसे भक्ति, विवेकसे मुक्ति, जाननेकी सामर्थ्य उसमें आ जायगी और वह उसे पहले

जानकर पीछे मान लेगा। इसमें भी कोई आपत्ति नहीं है। यह भी उनको पानेका एक उपाय है।' जिन्हें मनुष्य अपना मान लेता है और जिनपर विश्वास करता है, क्या उसमें स्वाभाविक प्रेम नहीं होता ? क्या उनमें प्रेम करनेके लिये मनुष्यको पाठ पढ़ना पड़ता है ? क्या किसी प्रकारका कोई अनुष्ठान करना पड़ता है या कहीं एकान्तमें आसन लगाकर चिन्तन करना पडता है ? क्या यह सबका अनुभव नहीं है कि

योगसे शक्ति स्वत: प्राप्त होती है। यदि सम्भव हो तो सात दिनमें एक बार, जिनसे स्वभाव मिलता हो-ऐसे सत्संगी भाइयोंके साथ बैठकर आपसमें विचार-विनिमय करे और उनके सामने अपने

दोषोंको बिना किसी संकोच तथा छिपावके स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट कर दे तथा उनको हटानेके लिये उनसे परामर्श ले। ऐसा करनेसे साधकके दोष शीघ्र ही मिट

सकते हैं।

सन्त श्रीमुण्डिया स्वामी संत-चरित-(श्रीरतिभाईजी पुरोहित) हर साल गिरनारकी परिक्रमा-यात्रा (जो यहाँ लीली

सन्त श्रीमुण्डिया स्वामी



संख्या ६]

डमरा नामका एक छोटा-सा गाँव है। इस गाँवमें यजुर्वेदीय माध्यन्दिनी शाखाके शाण्डिल्यगोत्री सोरठी श्रीगौड मालवीय परमपवित्र, अयाचक व्रतधारी शुद्ध ब्राह्मणदम्पती

गुजरातमें जूनागढ़ जिलेके भेसाण शहरके पास

काशीराम वेलजी भट्ट और पानबाई रहते थे। इस द्विज परिवारमें सं०१९१० भाद्र शुक्ल दशमी दिनांक २ सितम्बर १८५४ ई० गुरुवारको ब्राह्म मुहुर्तमें

एक बालकका जन्म हुआ। नाम रखा गया दयाराम। दयारामजीने यज्ञोपवीत-संस्कारके बाद ग्राम्य पाठशालामें शिक्षा प्राप्तकर गाँवके जमींदार वापी दरबार शेर

जुमाखानजीके दरबारमें हवलदारकी नौकरी शुरू की। नामके रूप दयाभावसे भरे दयारामजी हवलदारकी नौकरीके साथ गाँवमें भिक्षावृत्ति करते और उससे जो

कुछ प्राप्त होता, उससे रैवतक गिरनारपर्वतकी दर्शन-यात्रा करके आने-जानेवाले साधु-सन्त-महात्माओंको भोजन कराते और बैठकर भजन-कीर्तन करते-कराते थे।

गाँवमें एक प्रजापति कुमार भगत थे। वे

परिक्रमाके नामसे जानी जाती है)-में जाते थे और आते समय सन्त-महात्माओंकी मण्डली भी साथमें लाते थे। दयारामजी उनके साथ रातभर बैठकर भजन गाया करते थे। दयारामजीकी स्वरलहरी बड़ी ही मधुर थी। उन्हें

भजन गाना और भजन बनाना बडा प्रिय था। उनके बनाये हुए ५००से अधिक भजन मिलते हैं, जो लगभग सौ वर्ष पहले प्रकाशित उनकी 'मनप्रबोध-भजनावली' (गुजराती) पुस्तकमें संकलित हैं। यह भजनावली इस लेखके लेखकके पास आज भी है। उन्होंने अन्य भी कई पुस्तकें लिखी हैं, यथा—ब्रह्मगायत्री, गायत्री-

शिष्यधर्मोपदेशिका आदि। ये सभी पुस्तकें प्रायः अप्राप्य हैं।

एक बेटा महाशंकर और तीन बेटी संतोकबेन, प्रेमबेन और कडवीबेन हुए। दयारामजीको साधुसंगसे भक्तिका रंग चढ़ गया था। दयारामजी अपने गाँवके नजदीक सुप्रसिद्ध सन्त

अमर देवीदास परष (भेसाण) और एक बुड्ढे बाबाजीके धूने (अग्निकुण्ड)-की जगह आया-जाया करते थे। उनके गाँवके कुमार भगतके घर एक गिरनारी सन्त महात्मा आये। सन्तने द्विज परिवारके तेजस्वी पुत्र

दयारामका दिव्य तेज देखकर कहा-बेटा दया! तू दया नहीं, परम दयाका सागर है। तेरा काम दूसरेका कल्याण करना और भूखे लोगोंको खिलाना है। प्रभुकी भक्ति

करना है, बन्दूक बाँधकर दरबारी हवलदारी करना नहीं है, दरबारकी हवलदारी छोड़, प्रभुकी हवलदारी कर। तेरा बेडा पार हो जायगा। सन्तके उपदेशका दयारामजीपर गहरा असर हुआ। 'सर्वसङ्गविनिर्मुक्त समचित्तो बभूव

अक्षर-चौबीसी, कुदरत-कला, मोक्ष-सोपान, ब्रह्मविलास,

दयारामजीकी शादी माणेकबाईके साथ हुई। उनके

ह'—सबका संग त्यागकर ब्रह्मनिष्ठ हो गये। दयारामने प्रभुसे माँगा—'भगवत्यच्युतां भक्ति'—हे प्रभु! भगवान् और भक्तोंमें मेरी सदा निश्चल भक्ति बनी रहे।

भाग ९४ दयारामजी अपना घर-परिवार छोडकर वडिया समाधि-स्थली है। स्वामीजीने श्मशानभृमिमें एक आँवलेके वृक्षके मूलमेंसे दो आँवलेके वृक्ष निकले हुए देखे। (भेसाण)-के रास्तेपर स्थित बुड्ढे बाबाजीके धुनेपर आ गये। दयारामजीको साधु बननेसे रोकनेके लिये, जबरन स्वामीजीको गिरनारी सिद्धसन्त घोडा साँईके वचन याद घर लाने परिवारके भाई कानजीभाई, सब परिवारवालोंको आये। स्वामीजीने यहाँ अपना आसन जमाया। साथमें लेकर आये। दयारामजी घर गये। थोडे दिन रुके एक बार स्वामीजीके पास अंजारके रास्तेसे निकले और फिर बुड्ढे बाबाजीका आशीर्वाद लेकर रैवतक साध्-सन्तोंकी एक मण्डली आयी, वे सभी कहने लगे— हम सब कच्छके प्रसिद्ध 'मातानो-मठ' और नारायण गिरनार पर्वत (भवनाथ-जूनागढ़)-के दातार टेकरीकी नगारीया पत्थर (जो पत्थर नगारेके जैसा बजता है)-सरोवरकी दर्शन यात्राके लिये निकले, यहाँ अंजारमें ठहरे, लेकिन यहाँ खाना-पीना मिलता नहीं, भिक्षा भी मिलती के पासकी गुहामें जप-तप करने बैठ गये। आज भी वह गृहा 'मृण्डिया-नी-गुफा' के नामसे जानी जाती है। नहीं, भूख-प्याससे मरे जा रहे हैं, कुग्रामवासमें कहाँ दयारामजीको यहाँ एक सिद्ध सन्त 'घोड़ा साँई' मिले। ठहरे! और आगे चले जाते तो अच्छा था। घोडा साँई ने दयारामको लीला-रूमाल, तुंबडी और स्वामीजीने साधु-मण्डलीको सान्त्वना देते हुए धोका (लकडीका बडा दण्ड) दिया और कहा—दया! कहा—'देखो सन्तो! कच्छ दिलवालोंका प्रान्त है। जहाँ एक मूलमेंसे दो आँवलेका वृक्ष बना हो, वहाँ यहाँसे कोई भूखा नहीं जाता। सब कुछ मिल जायगा— आसन जमाकर जप-तप करना, सिद्धी मिलेगी। भोजन-प्रसाद भी, भेंट-पूजा भी, बस थोडी देर भजन दयारामजीने दातारी टेकरीसे निकलकर पंचाल करो, अभी रसोई तैयार हो जायगी।' स्वामीजीने 'जय अन्नपूर्णा माँ', 'जय गुरुदेव' भूमि (सुरेन्द्रनगर) थानगढ़ गाँवकी प्रसिद्ध जगह 'वासुकी बाँडिया बेलीकी गुहा' में योगसाधना की। यहाँसे कहकर अपनी झोली खोली और साधू-मण्डलीको निकलकर सौराष्ट्रमें प्रसिद्ध छोटी-काशी जामनगर शहरकी लड्डू-भजियाका पेटभर भोजन खिलाकर भेंटपूजा भी रंगमती नदीके किनारे ब्रह्मानन्दिगरिजीके आश्रममें आये। दी। साध्-मण्डलीने स्वामीजीका नाम पृछा, लेकिन यहाँ दयारामजीने स्वामी श्रीब्रह्मानन्दिगरिजीसे गुरुदीक्षा स्वामीजीने अपना नाम बताया नहीं, स्वामीजीने इस ली और दयारामजीसे स्वामी श्रीदयानन्दगिरि बने। समय माथेपर मुण्डन किया हुआ था, इसलिये पूरी स्वामीजीको गुरुसे कच्छ-रापरके विद्रोया डुंगुरमें साध्-मण्डली भोजनके बाद जयकारा लगाने लगे— जप-तप साधना करनेकी आज्ञा मिली। स्वामीजी कच्छ 'मुण्डिया स्वामीकी जय'। तबसे स्वामीजीका नाम जानेके लिये नावमें सवार हुए। नाव तूफानमें डगमगाने मुण्डिया स्वामी पड़ गया। लगी। सब डर गये, परंतु स्वामीजी डरे नहीं। स्वामीजीने कहा जाता है कि स्वामीजीपर अन्नपूर्णा देवी प्रसन्न थीं। जब वे अपनी झोली लेकर 'जय अन्नपूर्णा माँ', 'जय सबको प्रभु-प्रार्थना करनेको कहा। सब प्रवासी प्रभु-गुरुदेव' का जयकारा लगाते थे, तब वह किसी भी समय प्रार्थना करते, गाने लगे— 'प्रभु भक्तवत्सल व्रतधारी, किसीको भी बिना आर्थिक व्यवस्थाके खिला सकते थे। लीयो नीज दास उगारी, स्वामीजी अपनी साधू-मण्डलीके साथ कहीं भी, किसी भी समय पहुँच जाते थे और बिना भोजन-में अति दीन कहावुं, प्रसादके बरतनपर 'जय अन्नपूर्णा माँ', 'जय गुरुदेव' शुं भेंट शरणमां लावुं रे...' प्रभु-प्रार्थना सम्पूर्ण होते ही न जाने कहाँसे एक कहकर अपना एक वस्त्र ढक देते थे। भोजन-प्रसाद नाव आयी और सब प्रवासियोंको बिठा लिया। सबको पूरा हो जाता था। अन्नपूर्णाका भण्डार अक्षुण्ण हो जाता था। यही अन्नपूर्णा माँके प्रसन्न होनेका स्वामीजी कच्छ-रापरसे अंजार सातश्मशानभूमिमें ુત્રામાં ndyligm Discord Regver https://dscr.gg/dhagner ના ખૂત રક્કામાં મુંત્રે પૃદ્ધ BY Avinash/Sha

कच्छ, जामनगर, धांगघ्रा, पोरबन्दर, शिरोही लख चौरासी योनि में, सबको भोजन देय। (राजस्थान) साजंद, जोधपुर (राजस्थान)और नेपाल सदा वही पालन करे, अपनो नाम न देय॥ स्वामीजीने स्वयं अपनी माताजीकी उत्तरक्रियामें आदिके राजपरिवार स्वामीजीके शिष्य थे। आकर सबको बडा भोजन-प्रसाद दिया था और माँकी स्वामीजीने कच्छ, अंजारमें शिवालय, जामनगरमें स्मृतिमें सबको एक-एक बडी पीतलकी थाली दी थी। अन्नपूर्णा मन्दिर, मोरबीमें मन्दिर, साणंद, लाठी आदि स्वामीजी मानते थे—'अन्नं हि प्राणिनां प्राण:।'. बहुतसे शहरों और गाँवोंमें अन्नक्षेत्र-आश्रम बनाये थे। प्राणियोंका जीवन अन्न है। गुजरातमें 'छप्पनियाँ दुकाल' प्रसिद्ध है। स्वामीजीने स्वामीजी तुलसी-विवाह आदि धार्मिक महोत्सवोंका सब जगह अन्नक्षेत्र शुरूकर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। स्वामीजीसे सब लोग प्रभावित थे। आयोजन भी किया करते थे। एक बार एक गाँवमें कुआँ बन रहा था, लेकिन पानी नहीं निकल रहा था। पानीके स्वामीजीने जामनगर स्टेटके महाराजा रणजीतसिंहजी (जो क्रिकेटर थे, और क्रिकेट-जगतुमें जिनके नामसे आडे एक बडा पत्थर आ जाता था और पानीको निकलने ही नहीं देता था। स्वामीजीने पत्थरको सम्बोधनकर प्रसिद्ध रणजी ट्राफी भी दी जाती है)-की विनतीसे जामनगरमें कहा—'एला भर्ला भाई! सबके पीनेके पानी आडे क्यों रंगमती नदीके किनारे अपने गुरुदेव ब्रह्मानन्दगिरिजीका आ रहा है? सबको पानी पीने दे। तुझे क्या हर्ज है? समाधि मन्दिर और अन्नपूर्णा मन्दिर बनवाये थे। तू ऊपर आ जा!' स्वामीजीके बोलते ही पानीका स्वामीजी सब जगह धर्मध्वजा फहराकर धूमधामके

शद्धिका अर्थ

फव्वारा फूटा, पत्थर ऊपर आकर पानीमें तैरने लगा। जो स्वामीजीकी समाधितक तैरता रहा था। एक गाँवमें प्रसिद्ध लोकदेवता श्रीरामदेवजीके मण्डपका आयोजन हो रहा था। पीनेका पानी मिलना मुश्किल हो गया। एक कुआँ था, लेकिन उसका पानी जहरीला था। कुआँ पूरा पानीसे भरा हुआ था, लेकिन कोई पानी पी नहीं सकता था। स्वामीजीने कुएँमें थोड़े

तुलसीदल और थोडी-सी प्रसादीकी शक्कर डालकर

हरिस्मरण किया। पानी अमृत-जैसा मीठा हो गया।

संख्या ६]

आ गये।

विक्रमी पौष कृष्णपक्षकी तृतीया सोमवारके दिन पचहत्तर (७५)वर्षकी आयुमें जामनगर शहरकी रंगमती नदीके किनारे अपने गुरुदेव ब्रह्मानन्दगिरिजीकी समाधिके पास ही जीवित समाधि ली। यह स्थान आज भी विद्यमान है।

साथ जप-तप साधनकर, मन्दिर, आश्रम, अन्नक्षेत्र

बनवाकर, अपने अन्तिम पडाव ब्रह्मलीन होनेके लिये जामनगर अपने गुरुदेव श्रीब्रह्मानन्दजीकी समाधि स्थानपर

सन्त श्रीमृण्डिया स्वामी दयानन्दिगरिने सं० १९८५

शुद्धिका अर्थ महान् विरक्त सन्त उड़िया बाबा प्रायः अपने प्रवचनमें कहा करते थे, 'जबतक शुद्ध-पवित्र नहीं बनोगे,

तबतक न अच्छे मानव कहलानेके अधिकारी हो सकते हो, न भगवानुकी कृपा ही प्राप्त हो सकती है। अतः सबसे पहले शृद्धिपर ध्यान देना चाहिये।' एक दिन स्वामी अखण्डानन्दजीने उनसे पूछ लिया, 'बाबा, शुद्धिसे आपका क्या तात्पर्य है?' उड़िया बाबाने उत्तर दिया, 'असत्य, हिंसा तथा अन्य विकारोंके त्यागसे शरीर शुद्ध होता है। संयम और मर्यादापूर्वक बोलनेका संकल्प लेने तथा भगवान्के नामका जप करनेसे वाणी शुद्ध होती है। दान करनेसे धन शुद्ध

होता है। धारणा व ध्यानसे अन्तःकरण शुद्ध होता है।' बाबा कुछ क्षण मौन रहनेके बाद पुन: बोले, 'शुद्धिका लक्ष्य तमाम विकृतियोंसे मुक्त होनेका संकल्प लेना है। विकृतियाँ एवं अवगुण ही तो मानवके सच्चे विकासमें अवरोध पैदा करते हैं।' बाबाजीके चंद शब्दोंने स्वामीजीकी जिज्ञासाको शान्त कर दिया। [स्वामी श्रीजगदेवानन्दजी]

गो-चिन्तन— गोसेवाके फलस्वरूप प्राण-रक्षा भगवान् कृष्णकी तरफ देखते हुए कहा—'कन्हैया, मुझे यह घटना लगभग चालीस वर्ष पूर्वकी है। मैं मरनेकी चिन्ता नहीं है। परंतु यह उचित समय नहीं है,

देशनोक करणीधामका निवासी हूँ। मात्र २१ वर्षकी छोटी यदि तुम ले जाना चाहो तो तैयार हूँ। क्योंकि मैं इस

उम्रमें मुझे दमाकी शिकायत हो गयी थी और लगभग ३५ वर्षतक इस बीमारीसे पीड़ित रहा हूँ। मैं २० वर्षसे भी अधिक समयसे श्रीकरणी-गौशालासे सम्बद्ध रहा हूँ। घटना विक्रम-संवत् २०३६ फाल्गुनकी है। मैंने नित्यकी भाँति भगवानुका नाम लेकर रात्रि ८ बजे गोशालाके मन्त्रीके साथ चंदेके लिये प्रस्थान किया। लेकिन जब मैं घरसे रवाना हुआ तो अचानक मेरी तबीयत खराब हो गयी।

मेरी बिगड़ती स्थिति देखकर मेरी माताजीने मुझसे कहा कि तुम शीघ्र ही इलाजके लिये जयपुर चले जाओ, और में जयपुरके लिये खाना हो गया। रास्तेमें सोचा, पहले मन्दिरमें माताजीके दर्शन करता चलूँ। जब मैं करणी माताजीके मन्दिर दर्शनार्थ पहुँचा तो उस समय ज्योति जल रही थी। मैं श्रद्धावनत हो माँकी स्तुतिमें ध्यानमग्न हो गया और जब ध्यान टूटा तो श्रीमाँके चरणोंमें स्वच्छ धवल देदीप्यमान एक ज्योति-पुंजका

दर्शन हुआ, जिसे लोग बहुत शुभ मानते हैं। मनमें ऐसा लगने लगा कि कोई चमत्कार होनेवाला है। फिर वहाँसे में जयपुरके लिये चल दिया। रेलमें बुखार होने लगा तथा दमाकी शिकायत भी बढ़ती गयी और जयपुर पहुँचते-पहुँचते बुखार १०४ तक पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर तीन दिनतक अच्छे-अच्छे डॉक्टरोंसे इलाज कराया, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। तीन दिन बाद मैंने बीकानेरके एक विशेषज्ञ डॉक्टरको दिखाया, फिर भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रही। अब मुझे ऐसा महसूस होने लगा कि मैं बच नहीं पाऊँगा। मैं अस्पतालमें जिस बेडपर सोया था, उसके

सिराहने दीवालपर भगवान् लड्डू-गोपालकी तस्वीर लगी

हुई थी और ठीक सामनेकी तरफ भगवान् शंकरकी 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की चन्द्राकार तस्वीर लगी हुई थी, जिसमें

भगवान् शंकरका विश्राम करते हुए चित्र था। मैंने

असहनीय कष्टसे ऊब गया हूँ।' इस प्रकार कहते हुए ज्यों ही भगवान्को नमस्कार किया, त्यों ही मैं बेहोश हो गया। देखभालके लिये आये हुए पारिवारिक जन रोने लगे और तुरंत प्रसिद्ध संतोक्बा दुर्लभजी हॉस्पिटल उपचारके लिये मुझे लोग ले गये, वहाँ पहुँचनेसे पहले ही मेरी धड़कन लगभग बन्द-सी हो गयी। अत्यन्त घबराहटके साथ बार-बार लोग धडकन सुननेकी चेष्टा करने लगे। अन्तमें मेरे भाईने निराश होकर मेरे बडे लडकेसे कहा कि अब इन्हें घरपर ले चलो, क्योंकि अब डॉक्टर कुछ नहीं कर सकते। परंतु मेरे लड़केने बड़ी ही दृढ़तासे कहा कि एक बार तो हॉस्पिटल अवश्य ले

जायँगे, फिर भगवान्की जैसी कृपा। मुझे इमरजेन्सी वार्डमें ले जाया गया। जब डॉक्टर ऑक्सीजन लगाने लगे तो ऑक्सीजन नहीं लगी। डॉक्टरने निराश होकर कहा कि इनके जीवनका कोई लक्षण नहीं दिखायी दे रहा है। परिवारवाले रोने लगे। सब लोग बड़ी ही कातर-दृष्टिसे आशा लगाये हुए बार-बार डॉक्टरकी ओर देखने लगे। ठीक उसी समय किसी लक्षण-विशेषसे डॉक्टरको कुछ आशा जगी और उसने पुनः ऑक्सीजन लगा दी। इधर परिवारवाले भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करने लगे। कुछ देर बाद मेरे दिलकी धड़कन वापस आ गयी। अनवरत इलाज चलनेके तीन घण्टेके बाद मुझे होश आया और मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। मैं तो इसे वर्षोंसे गोशालाकी व्यवस्था एवं

िभाग ९४

गोसेवा करनेका ही प्रत्यक्ष फल समझता हूँ। गौमाताकी सेवा और गोपाल श्रीकृष्णकी कृपासे मुझे एक नया जीवन मिला और साथ ही साथ मेरे दमेकी शिकायत भी धीरे-धीरे कम हो गयी और अब मैं अपने परिवारके साथ

सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।—गोकलचंद कासट

संख्या ६] साधनोप	योगी पत्र ४१
\$	************************************
साधनोपयोगी पत्र	
पति ही स्त्रीका गुरु है	
प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र	होते हैं।'
मिला। धन्यवाद। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—	भगवान् सबके अन्तरात्मा हैं, प्रियतम हैं, पति हैं
(१) पुरुषको ही गुरुकी शरणमें जाकर आत्मज्ञानका	तथा सद्गुरु हैं; अत: उनकी शरण लेनेसे स्त्रीके
उपदेश लेना चाहिये, इसके लिये आप प्रमाण चाहते हैं।	सतीत्वपर कोई आँच नहीं आती। परंतु जो पर-पुरुष
प्रमाण बहुत हैं, सबका संग्रह करनेसे पत्रका कलेवर	यति, गृहस्थ अथवा विरक्त हैं, उनकी शरण लेनेसे
बढ़ेगा, अत: दो-एक प्रमाण उपस्थित करते हैं—	स्त्रीके सतीधर्मकी मर्यादाको ठेस पहुँचती है। अत: स्त्री
मुण्डकोपनिषद्के मन्त्र (१।२।१२)-में कहा गया है—	भगवान्की उपासना तो कर सकती है, परंतु किसी पर-
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।	पुरुषको गुरु नहीं बना सकती। इसीलिये मैत्रेयीने अपने
अर्थात् 'उस नित्य वस्तुका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये	पति याज्ञवल्क्यजीसे ही तत्त्वज्ञानका उपदेश लिया।
वह जिज्ञासु पुरुष गुरुकी ही शरण ले।'	उन्होंने किसी दूसरे साधुको गुरु नहीं बनाया था।
मुण्डकोपनिषद्के ही मन्त्र (१।२।१३)-में कहा	(३) 'पत्नीको पतिसेवासे ही सब कुछ मिल जाता
गया है कि गुरु उस शरणागत एवं शम-दम-सम्पन्न	है।' इस कथनके लिये प्रमाणोंकी कमी नहीं है।
शिष्यको ब्रह्मविद्याका उपदेश करे—	मनुस्मृतिमें लिखा है कि 'वैवाहिक विधि ही स्त्रियोंके
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्	लिये वैदिक संस्कार है। पतिकी सेवा ही उनके लिये
प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।	गुरुकुलवास है तथा घरका काम-काज ही उनके लिये
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं	अग्निहोत्र है।'
प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥	यथा—
उक्त दोनों स्थलोंमें शिष्यके लिये पुल्लिंग विशेषण	वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
आये हैं। स्त्रीलिंग विशेषण कहीं नहीं आया है। इससे	पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥
पूर्वोक्त बातकी सिद्धि होती है। उपनिषदोंमें जितनी	(२।६७)
आख्यायिकाएँ आयी हैं, उनमें सब जगह पुरुष ही	स्त्रियोंके लिये अलग व्रत, यज्ञ और उपवासकी
विभिन्न सदुरुकी शरण हुए बताये गये हैं, कहीं भी स्त्री	विधि नहीं है, वह जो पतिसेवा करती है, उसीसे स्वर्ग-
शिष्यने तत्त्वज्ञानके लिये किसी गुरुकी शरण ली हो, यह	लोकमें पूजित होती हैं—
नहीं आया है।	नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
(२) गीतामें स्त्रियोंके लिये जो परम गतिकी प्राप्ति	पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥
बतायी गयी है, वह भगवान्की शरणमें जानेसे होती है।	(मनु० ५। १५५)
भगवान्ने (गीता ९। ३२)-में श्रीमुखसे कहा है—	विष्णुपुराणमें वेदव्यासने महर्षियोंसे कहा—'नारी
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।	अपने पतिके हितमें संलग्न रहकर यदि मन, वाणी तथा
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥	कर्मसे उनकी सेवा करे तो अधिक क्लेश सहन किये
'हे अर्जुन! मेरी शरण लेकर जो पापयोनि जीव हैं,	बिना ही पतिरूप परमेश्वरका सालोक्य (उनके परम
वे तथा स्त्री, वैश्य एवं शूद्र भी परम गतिको प्राप्त	धाममें निवास) प्राप्त कर लेती है—

********************** (६) पित ही स्त्रीका गुरु है—**पितरेको गुरुः** योषिच्छुश्रूषणाद् भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा। स्त्रीणाम् - यह वचन सर्वत्र प्रसिद्ध है। तीसरे प्रश्नके तद्धिता शुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः॥

नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा। (वि० पु० ६। २। २८-२९)

(४) भगवान्ने गीता (९। ३२)-में स्त्रीके लिये

जिस 'परा गति' की प्राप्ति बतायी है, उसका साधन भी

उन्होंने स्वयं कह दिया है—'अपनी शरणागति'। यदि

नारी अपने 'पतिको' भगवानुका प्रतीक मानकर भगवद्भावसे उसकी सेवा करे तो निश्चय ही उस परम गतिको पा सकती है। उपर्युक्त शास्त्रवचन इस कथनके समर्थक हैं।

(५) पतिव्रता स्त्री पातिव्रत्यके प्रभावसे ही दिव्य

ज्ञान प्राप्त कर लेती है, इसके शास्त्रमें पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं—महाभारत-वनपर्वमें पतिव्रताका उपाख्यान

देखिये, जिसने एक तपस्वीके अभिमानको चूर्ण कर दिया था। तपस्वीने क्रोधपूर्वक एक पक्षीकी ओर देखा और वह जलकर भस्म हो गया। इसपर तपस्वीको अपनी तपःशक्तिका गर्व हो आया। वह एक गृहस्थके

घरपर भिक्षाके लिये गया और आवाज दी। उस घरमें पतिव्रता ब्राह्मणी अपने पतिकी सेवामें लगी थी, उसने तपस्वीको ठहरनेके लिये कहा। जब वह देर करके

भिक्षा लेकर द्वारपर आयी तो तपस्वीने उसे भी क्रोधपूर्वक देखा। ब्राह्मणीने शान्तभावसे उत्तर दिया—'बाबा! मैं वह पक्षी नहीं, जो तुम्हारे क्रोधसे जल जाऊँगी। भिक्षा लो और धर्मव्याधके पास जाकर कर्तव्यकी शिक्षा ग्रहण

करो।' ब्राह्मणके विनयपूर्वक पूछनेपर पतिव्रताने बताया— 'मुझे यह दिव्य ज्ञान पतिसेवाके प्रभावसे प्राप्त हुआ है।' पद्मपुराणमें भी इस पावन इतिहासका वर्णन है। अरुन्धती

और अनुसूयाजीकी पातिव्रत-शक्तिकी महिमा सर्वत्र प्रसिद्ध है। अनुसूयाजीने अपनी पतिसेवाके प्रभावसे

ब्रह्मा, विष्णु और शिवको भी क्षणभरमें नवजात शिशु

बना दिया था। वाल्मीकीय रामायणमें अनुसूया-सीता-संवादमें पातिव्रत्यकी महामहिमाका वर्णन देखने और मृत्युके बाद जब देवरने उन्हें बहुत सताया, तब वे घर छोड़कर वृन्दावनमें चली गयी थीं। सती स्त्री पतिकी आज्ञा लेकर परम पुरुष भगवान्की आराधना कर सकती है। इसमें कोई विरोध नहीं है। शास्त्रमें कहीं भी

स्त्रियोंके लिये पर-पुरुषको गुरु बनानेका दृष्टान्त नहीं

मिलता है। आपने लिखा है, बहुत-सी भक्त स्त्रियोंने सद्गुरुको शरण ली है। परंतु उदाहरण एकका भी

उत्तरमें जो मनुस्मृति (२। ६७)-का श्लोक उद्धृत

किया गया है, उससे भी इसकी पुष्टि होती है। मीराँजी

पतिकी मृत्युके बाद वृन्दावनमें जाकर भगवान्के शरणागत

हुईं। पतिने तो उनके लिये भगवान्की आराधनाके

निमित्त एक मन्दिर बनवा दिया था, जो आज भी

चित्तौड़-दुर्गमें विद्यमान है। पतिके जीवनकालमें मीराँजी

घर रहकर ही भगवान्की आराधना करती थीं। पतिकी

भाग ९४

आपने नहीं दिया। शास्त्रीय उदाहरण प्रस्तुत करें कि किस सती स्त्रीने किस पर-पुरुषको गुरु बनाया है। भगवान्को गुरु बनाना तो ठीक ही है। आपने लिखा है, स्त्रियोंके लिये भी भगवान्की शरणमें जानेके लिये गुरुकी आवश्यकता वैसी ही है,

जैसे पुरुषोंके लिये। किंतु मेरी तुच्छ सम्मति यह है कि स्त्रियोंको दूरसे साधु-महात्माके सत्संग-व्याख्यान, उपदेश आदि सुनने चाहिये और भगवद्भाव होनेपर स्वयं मनसे भगवानुकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। गुरुकी शरण उनके लिये आवश्यक नहीं है। बहुत बार 'गुरु' के

नामपर आजकल ऐसे व्यक्ति मिल जाते हैं, जो स्त्रियोंको

भगवान्से विमुखकर अपनी नीच सेवामें लगा लेते हैं।

ऐसे धोखेसे बचनेके लिये यह आवश्यक है कि स्त्री

भगवानुको ही गुरु बनाये। मानव-गुरु पर-पुरुष होनेके

कारण स्त्रीके अस्पृश्य तथा अग्राह्य है। और आजकलके दूषित युगमें तो इस विषयमें विशेष सावधानीकी आवश्यकता पद्मोत्रोतयःङ्गी औड्टउसे औं ऐस रेस तिक्षेट्ट: शैंdsc.gg/dharmar MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha संख्या ६] व्रतोत्सव-पर्व व्रतोत्सव-पर्व सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़-कृष्णपक्ष तिथि वार नक्षत्र दिनांक मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि धनुराशि दिनमें ४। १० बजेसे। प्रतिपदा रात्रिमें ११। ८ बजेतक शिन ज्येष्ठा दिनमें ४।१० बजेतक ६ जून द्वितीया " ९।५९ बजेतक रवि मूल 🕠 ३।३९ बजेतक मूल दिनमें ३। ३९ बजेतक। 9 ,, भद्रा दिनमें ९। ३९ बजेसे रात्रिमें ९। १९ बजेतक, मकरराशि रात्रिमें

सोम पु०षा० " ३। ३६ बजेतक 6 11 ९।४२ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीवृत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।२५ बजे, मृगशिराका सूर्य प्रातः ६। २४ बजे।

9 "

प्रात: ५।४२ बजे।

भद्रा दिनमें १०।५९ बजेतक।

मूल रात्रिमें १।४ बजेसे।

भद्रा प्रातः ५। १६ बजेतक।

वृषराशि दिनमें ३।५ बजेसे, प्रदोषव्रत।

अमावस्या, सूर्यग्रहण, भारतमें—

आर्द्रा में सूर्य प्रातः ७।११ बजे।

मीनराशि दिनमें ३।५९ बजेसे, श्रीशीतलाष्टमी।

भद्रा सायं ४।१५ बजेसे, मेषराशि रात्रिमें ३।४१ बजेसे,

योगिनी एकादशीव्रत (सबका), मूल प्रात: ६।१५ बजेतक।

श्राद्धादिकी **अमावस्या, मिथुनराशि** रात्रिमें १२।४१ बजेसे।

प्रारम्भ-दिनमें ९।५७ बजे एवं मोक्ष दिनमें २।२९ बजे।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें १०।१९ बजेसे रात्रिमें १०।४६ बजेतक।

तृतीया " ९।१९ बजेतक

चतुर्थी "९।९ बजेतक मंगल उ०षा० "४।१ बजेतक

रवि

सोम

बुध

अष्टमी " १। १८ बजेतक

नवमी " ३।१४ बजेतक

दशमी प्रातः ५।१६ बजेतक

एकादशी दिन ७।१४ बजेतक

प्रतिपदा दिनमें ११।३३ बजेतक

द्वितीया '' १०।५७ बजेतक

तृतीया "९।५२ बजेतक

त्रयोदशी,,१२। २१ बजेतक

चतुर्दशी ,,१०।४८ बजेतक

पूर्णिमा ,, ९।३८ बजेतक

द्वादशी 🗥 ८ ।५७ बजेतक | गुरु

दशमी अहोरात्र

श्रवण सायं ४।५८ बजेतक

पंचमी " ९।३० बजेतक बुध षष्ठी 🥠 १०। २१ बजेतक | गुरु

धनिष्ठा 🕖 ६ । २५ बजेतक

सप्तमी '' ११।३८ बजेतक

20 11 ११ "

शतभिषा रात्रि ८। १८ बजेतक शुक्र

शनि

पू०भा० 🗤 १० । ३३ बजेतक

१२ " १३ " १४ "

उ०भा० 🔑 १।४ बजेतक १५ ,,

रेवती 🕠 ३। ४१ बजेतक

मंगल अश्वनी अहोरात्र

१६ " अश्वनी प्रात: ६।१५ बजेतक १७ ,, भरणी दिनमें ८। ३६ बजेतक 26 11 १९ "

कृत्तिका "१०।३५ बजेतक

मृगशिरा "१।१३ बजेतक

नक्षत्र

आर्द्रा दिनमें १। ४७ बजेतक

ज्येष्ठा 🕠 १२।११ बजेतक

मुल 🕠 ११।३६ बजेतक

पू०षा० 🗤 ११ । २६ बजेतक

रोहिणी "१२।८ बजेतक

शनि रिव

त्रयोदशी*''* १०।१९ बजेतक शुक्र चतुर्दशी 🕠 ११।१३ बजेतक अमावस्या " ११। ३९ बजेतक

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ्-शुक्लपक्ष तिथि

वार

सोम

चतुर्थी 🗤 ८ । २४ बजेतक गुरु पंचमी प्रात: ६। ३४ बजेतक मघा 🕠 ११। ३७ बजेतक शुक्र शनि

सप्तमी रात्रिमें २ ।९ बजेतक पु०फा० ग १० । १५ बजेतक अष्टमी ,, ११।४२ बजेतक रवि उ०फा०,, ८।४२ बजेतक

हस्त प्रातः ७।४ बजेतक नवमी ,, ९।१२ बजेतक सोम मंगल

दशमी सायं ६ । ४६ बजेतक एकादशी दिन ४। २४ बजेतक बुध

शुक्र

शनि

रवि

चित्रा प्रातः ५। २३ बजेतक विशाखा रात्रिमें २।१९ बजेतक द्वादशी 🦙 २।१५ बजेतक अनुराधा 🕠 १। ५ बजेतक गुरु

कर्कराशि दिनमें ७।५० बजेसे, श्रीजगदीशरथयात्रा। मंगल पुनर्वसु 🗤 १।५२ बजेतक २३ " भद्रा रात्रिमें ९।८ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल दिनमें बुध पुष्य 🕠 १।२८ बजेतक 28 " १।२८ बजेसे। आश्लेषा 🗤 १२ । ४३ बजेतक २५ ,,

भद्रा दिनमें ८। २४ बजेतक, सिंहराशि दिनमें १२। ४३ बजेसे। २६ " २७ ,, 76 11

2 "

३ "

8 11

20 11

28 "

दिनांक

२२ जून

मुल दिनमें ११। ३७ बजेतक। 29 " 30 ,,

१ जुलाई

भद्रा दिनमें १२।५५ बजेतक। **तुलाराशि** सायं ६।१४ बजेसे। **भद्रा** प्रात: ५ । ३५ बजेसे दिनमें ४ । २४ बजेतक, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें

प्रदोषव्रत, मूल रात्रिमें १।५ बजेसे।

धनुराशि रात्रिमें १२।११ बजेसे।

मुल रात्रिमें ११।३६ बजेतक।

पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा।

भद्रा रात्रिमें २।९ बजेसे, **कन्याराशि** दिनमें ३।५३ बजेसे।

८।४२ बजेसे, श्रीहरिशयनी एकादशीव्रत (सबका)।

भद्रा दिनमें १०। ४८ बजेसे रात्रिमें १०। १२ बजेतक, व्रत-पूर्णिमा,

भद्रा रात्रिमें १०।२१ बजेसे, कुम्भराशि प्रात: ५।४२ बजेसे, पंचकारम्भ

पंचक समाप्त रात्रिमें ३।४१ बजे, मिथुन- संक्रान्ति प्रात: ६।३८ बजे।

[भाग ९४

कृपानुभूति दैवी कृपाका आभास

अपने हाथके इशारेसे मुझे पुनः लौट जानेका संकेत

मुझे अपने मित्रके आग्रहपर अपने गाँवसे कोई २०

किया और अपनी ग्रामीण भाषामें मुझे कुछ कहती हुई कि०मी०की दूरीपर अवस्थित रणिया गाँव पहुँचना था। आगे बढ़ गयी। वह तेजीसे भागी हुई घाटी चढ़ रही यह गाँव भयंकर जंगल और पर्वतीय क्षेत्रमें स्थित था।

मैं प्रात: स्नान, ध्यान और पूजा-पाठसे निवृत हो, भोजन थी। उसकी भाषा नहीं समझ पानेसे मैंने उसके कथनपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और घाटीसे नीचे उतरता ही

करनेके पश्चात् घरसे निकल पड़ा। गाँव जानेका मार्ग कच्चा, धूलभरा, झाड्-झंकाड्युक्त और पथरीला था।

इस मार्गपर पहले मैं दो-तीन बार आ-जा चुका था। में पैदल ही सफरमें निर्द्वन्द्व आगे बढता गया। बहुत चलनेके पश्चात् मुझे लगा कि मैं निर्दिष्ट स्थानसे बहुत आगे निकल चुका हूँ। कदाचित् मैं रास्ता चुक गया हूँ; क्योंकि चलते-चलते दोपहर ढलनेको हो गया, इतना

समय वहाँ पहुँचनेमें मुझे कभी नहीं लगा। मैं लगातार चलनेसे कुछ थकान भी महसूस करने लगा। कुछ देर विश्रामके पश्चात् फिर चलनेको उद्यत हुआ। उस

मार्गपर लोगोंका आवागमन भी नहीं-के बराबर था। मैं पूछूँ तो किससे पूछूँ कि रिणया गाँव यहाँसे कितना दूर है, किस ओर है। विवश हो मैं बिना रुके आगे बढ़ता ही गया। मैं यह भी एहसास नहीं कर पाया कि मैं किस दिशामें चल रहा हूँ। मुझे दिशा-भ्रम हो गया था। आगे बढनेपर मुझे गहरी घाटी मिली, मैं उस घाटीकी ढलानसे

नीचे उतरने लगा और देखा कि सामनेके पर्वतोंपर विशाल वृक्षोंकी झुरमुटोंपर डूबते सूर्यका हलका-सा प्रकाश छितरा रहा है। लगभग सन्ध्या होनेको आयी

और 'बोलना'। कुछ ही समय पश्चात् मुझमें दैवीय प्रेरणा जाग्रत् हुई और उस भागी जा रही महिलाके कथनपर मेरा ध्यान केन्द्रित हुआ। वह कह रही थी 'तुम

इस समय इधर कहाँ जा रहे हो ? वापस मुड चलो, आगे मत बढो, सुनते नहीं जानवर बोल रहा है।' उसने

जानवर शब्दका प्रयोग शेरके लिये किया। वह थोड़ी-थोड़ी देरमें आनेवाली आवाज ढोलकी नहीं, बल्कि शेरके दहाड़नेकी थी। जब शेरको पूरी ख़ुराक नहीं मिलती है तो वह सन्ध्या समय दहाड मारता है। उस

कहाँसे आ रहे हो ?' मैं स्तब्ध हो गया और उनसे कुछ

गया। उसके दो शब्द अवश्य मेरे पल्ले पड़े—'जानवर'

समय शेर ही दहाड़ रहा था, जिसे मैं भ्रमवश ढोल बजनेकी आवाज समझ रहा था। पहाडोंमें शेरके दहाडने की आवाज, ढोल बजने-जैसी ही ज्ञात होती है। मुझे ज्यों ही सुध आयी, फुर्तीसे मुड़ा और बड़े वेगसे घाटीपर चढ़ गया। कुछ आगे बढ़नेपर मुझे दो वनवासी लोग मिल गये। उन्होंने मुझे टोका, 'भाई, इस समय तुम इधर

भी कहनेका साहस नहीं कर पाया। उन्हें मैं क्या उत्तर देता? उन्होंने मेरे साथ काफी सहानुभूति बरती, मुझे ढाढस दिया और समीपके गाँवमें अपने घर ले गये। वहीं रात्रि व्यतीत की। दूसरे दिन रणिया गाँव पहुँचकर अपने कार्यसे निवृत हो, सकुशल अपने गाँव लौटा। मुझे आभास हुआ कि मेरी आराध्य देवी आशापुराने वनवासी वृद्ध महिलाका रूपधर उस वीरान जंगलमें

मुझे भारी संकटसे उबारा और मृत्युके मुँहमें जानेसे रोका। उनकी असीम कृपाने ही मुझे सुरक्षित घर लौटाया, अन्यथा उस रात तो मैं शेरके मुखका निवाला हो गया होता। - जयसिंह चौहान 'जौहरी'

थी। वीरान जंगलका अंचल धुँधलाने लगा। मैं निरुपाय आगे बढ़ता ही जा रहा था। उसी समय अचानक मुझे कुछ दूरीपर ढोल बजनेकी आवाज सुनायी दी। मुझे तसल्ली हुई कि अति निकट ही कोई गाँव है, जहाँ ढोल बज रहा है। यह आवाज थोड़े-थोड़े अन्तरालसे आ रही थी और मुझे विश्वास दिला रही थी कि मैं अब इस

आवाजके सहारे सम्भावित गाँवमें पहुँचकर सुरक्षित रात्रि व्यतीत कर लूँगा। उसी समय घाटीपर नीचेसे ऊपरकी ओर बढ़ती हुई एक वयोवृद्ध महिला (वनवासी) मेरे निकटसे गुजरी। ज्यों ही वह मेरे समानान्तर आयी, उसने

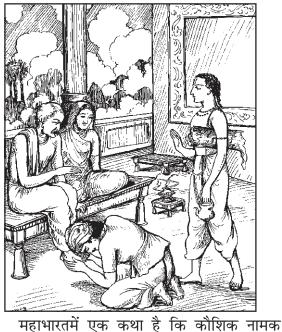
पढो, समझो और करो संख्या ६] पढ़ो, समझो और करो उसने सुझाव दिया कि मैं स्टेशनके खम्भेके किनारे (१) बैठकर रात गुजार दूँ और सुबह ट्रेन पकड़कर कार्डिफ अपरिचित रेलकर्मियोंकी सद्भावना चला जाऊँ। उन दिनों मैं ब्रिटेनके कार्डिफ विश्वविद्यालयमें मैंने कहा, 'इस तरहसे बैठनेमें तो मेरी कुल्फी बन पत्रकारितामें पी-एच.डी. कर रहा था। इसके लिये मुझे जायगी। ब्रिटिश सरकारने स्कालरशिप दी थी। जनवरी, १९९१ ई०की बात है। उस समय ब्रिटेनमें वह मेरी समस्या सुलझा नहीं सका। कड़ाकेकी ठंड थी। कुछ दिनों पहले बर्फबारी हुई थी। तब मैं पैडिंगटन स्टेशनकी पुलिस चौकीपर गया तेज हवाएँ चल रहीं थीं। इस कारण ठंड और भी बढ कि शायद वे मेरी समस्याका कुछ हल निकाल सकें। परंतु वहाँपर एक आदमी नशेमें धुत खड़ा था और गयी थी। मैं अपने पी-एच.डी. शोधकार्यके सिलसिलेमें उसका पुलिसवालेसे झगड़ा हो रहा था। इस कारण मैं सबेरे कार्डिफसे लंदन आया था। परंतु अपना कोट कार्डिफमें ही भूल गया था और एटीएम कार्ड भी भूल वहाँसे भी खिसक लिया; क्योंकि मुझे लगा कि गया था। दिन तो जैसे-तैसे गुजर गया, परन्तु रात में ठंड वातावरण बहुत तनावपूर्ण है और मेरी सुनवाई नहीं हो बहुत हो गयी। रातमें जब लंदनसे कार्डिफ वापस जाने पायेगी। लगा, तब मुझे पता चला कि कार्डिफ जानेवाली इंग्लैंडकी पुलिससे मददकी उम्मीद कर सकते हैं, आखिरी ट्रेन लंदनसे जा चुकी है। तब मेरे सामने समस्या लेकिन मुझे मदद नहीं मिली। खड़ी हो गयी कि जेबमें पर्याप्त पैसे भी नहीं हैं और उस अचानक मुझे रॉयल मेल (ब्रिटेनके पोस्ट-आफिस)-की एक लाल रंगकी वैन स्टेशनपर खड़ी दिखी। उसके भयंकर जाडेमें रात स्टेशनपर कैसे काटी जाय? ड्राइवरके पास मैं गया और उसको अपनी राम-कहानी लंदनमें पैडिंगटन स्टेशनसे मुझे कार्डिफकी ट्रेन पकड़नी थी। रातके कोई आठ बजे होंगे। स्टेशनपर घना सुनायी। ड्राइवरने सुझाव दिया कि सामने जो ट्रेन खड़ी है, कोहरा छाया हुआ था। सब तरफ सन्नाटा था। वहाँ रातमें स्टेशनोंपर सन्नाटा हो जाता है। बड़ी मुश्किलसे उसमें जाकर मैं बैठ जाऊँ। उस ट्रेनके डिब्बोंमें हीटिंगकी व्यवस्था है। अर्थात् सभी डिब्बोंमें पर्याप्त गर्मी है और मुझे एक रेलका कर्मचारी दिखायी पड़ा। मैंने उससे पूछा, 'मुझे कार्डिफ जाना है। कौन-सी ट्रेन जायगी?' वह ट्रेन ब्रिस्टल पार्क-वे तक जा रही है। कार्डिफ स्टेशन 'लास्ट ट्रेन टु कार्डिफ हैज गॉन' (कार्डिफ ब्रिस्टल पार्क-वेके बाद पड़ता है। उसने सुझाव दिया कि जानेवाली आखिरी ट्रेन जा चुकी है), उसने बताया कि मैं ब्रिस्टल पार्क-वेतक उस ट्रेनसे चला जाऊँ और वहाँपर कोई-न-कोई वेटिंग-रूम जरूर होगा। उस अगली ट्रेन तो सुबह ही जायगी। अब मेरे सामने संकट खडा हो गया कि रात कहाँ वेटिंग-रूममें रात गुजारूँ और सवेरे वहाँसे ट्रेन पकडकर कार्डिफ चला जाऊँ। गुजारी जाय? कोटके बिना खूब जाड़ा लग रहा था। जेबमें इतने ज्यादा पैसे भी नहीं थे कि किसी होटल (बेड मुझे उसका सुझाव बड़ा व्यावहारिक लगा और मैं ट्रेनमें जाकर बैठ गया। बैठते ही जाड़ेसे मुक्ति मिलने एंड ब्रेकफास्ट)-में जाकर रुक जाऊँ। लगी। ट्रेन लगभग खाली थी। मैंने स्टेशनपर किसी आदमीको ढूँढकर पूछा, 'यहाँ थोड़ी देर बाद टी.टी.ई. आया मेरे पास। उसको कोई वेटिंग-रूम (यात्री प्रतीक्षालय) है?' 'वेटिंग-रूममें तो मरम्मत चल रही है।' फिर मैंने अपनी रामकहानी सुनायी। मेरी समस्याको

भाग ९४ सुनकर उसने कहा कि वह सबका टिकट चेक कर ले, फिर उसने एक बहुत बड़ा कमरा, जिसमें कई बडे-बडे सोफे पडे थे, मेरे लिये खोल दिया। फिर मुझसे बात करेगा। उसने मुझसे कहा, 'इस कमरेमें हीटिंग अर्थात् थोडी देर बाद वह मेरे पास आया। उसके हाथमें बडी मोटी-सी एक रेलवेकी पुस्तक थी। मेरे बगलमें गर्मीकी पर्याप्त व्यवस्था है और यहाँ मैं अपनी रात बैठकर उसने किताबमें यह ढूँढ़ना चाहा कि ब्रिस्टल गुजार सकता हूँ।' पार्क-वेमें कोई वेटिंग रूम है या नहीं। उसकी सिर्फ एक ही शर्त थी। उसने मुझे सुझाव दिया कि मैं ब्रिस्टल पार्क-वेके 'आप कमरेके अन्दर लाइट न जलायें। ताकि बजाय ब्रिस्टल पार्क मीडपर उतर जाऊँ। ब्रिस्टल पार्क बाहरसे किसीको ये पता न चले कि इस कमरेमें कोई मीड पहले पड़ता है और उसके बाद ब्रिस्टल पार्क-वे रह रहा है।' आता है। परंतु खिडकी-दरवाजोंके शीशोंसे बहुत अधिक उसने कहा कि ब्रिस्टल पार्क मीडमें सवेरे मुझे रोशनी बाहरसे कमरेके अन्दर आ रही थी। इस कारण जल्दी ट्रेन मिल जायगी, लेकिन उसको उस मोटी कमरेके अन्दर लाइट जलानेकी कोई जरूरत ही न थी। मैंने वह रात उस कमरेके एक लम्बे सोफेपर सोकर पुस्तकसे ये स्पष्ट नहीं हो पा रहा था कि ब्रिस्टल पार्क मीडपर कोई वेटिंग-रूम है या नहीं। आरामसे गुजारी। उसके सुझावके अनुसार मैं उस जाड़ेकी रातमें सबेरे मुझे तब बहुत आश्चर्य हुआ जबिक उसी व्यक्तिने मेरे कमरेके दरवाजेके शीशेको खटखटाया और ब्रिस्टल पार्क मीडपर उतर गया। मैं अकेला यात्री था, जो कि उस स्टेशनपर उतरा था। पूरे प्लेटफार्मपर सन्नाटा कहा, 'योर ट्रेन टु कार्डिफ इज रेडी' (कार्डिफ जानेवाली था। बडी मुश्किलसे घने कोहरेके बीच एक आदमी आपकी ट्रेन तैयार खडी है।) मैंने शीघ्रतापूर्वक उठकर उस कमरेसे लगे बाथरूममें दिखायी पडा। तो मैंने उससे पूछा, 'यहाँ कोई वेटिंग-रूम है?' हाथ-मुँह धोया और कार्डिफकी ट्रेन पकड ली। 'वेटिंग-रूम तो नहीं है, परंतु आप स्टेशन मास्टरसे मुझे नहीं मालूम कि उस व्यक्तिका क्या नाम था, जाकर मिल लें।' परंतु ऐसा लगा कि शायद भगवानुने उसे उस रात मेरी मैं स्टेशन मास्टरके कमरेमें गया। वहाँ एक लडका मदद करनेके लिये वहाँ भेजा था। बैठा था, जो कि रेल कर्मचारी ही था। शायद सहायक —डॉ० संतोषकुमार तिवारी स्टेशन मास्टर रहा होगा। मैंने उसको बताया कि मैं (२) त्यागकी महिमा भारतसे हूँ और एक पत्रकार हूँ और आज यहाँ इस-मैंने सरकारसे लोन लेकर बिहारके बक्सर शहरमें इस तरहसे मुसीबत में फँस गया हूँ। उसने मुझसे पूछा, 'आपने खाना खाया या नहीं?' अपने माता-पिताके इच्छानुसार (उन लोगोंके गंगातटपर हालाँकि मैंने खाना नहीं खाया था, पर उससे कहा, जीवनका अन्तिम समय बितानेहेतु) एक घर बनवाना 'हाँ, खा चुका हँ।' वर्ष १९७२ ई० में आरम्भ किया, जो वर्ष १९७३ ई० फिर उसने बताया कि यहाँपर कोई वेटिंग-रूम तो के जून माहमें पूरा हुआ। मैंने अपने एक परम हितैषी नहीं है, पर मैं आपके रात काटनेकी व्यवस्था कर दुँगा। मित्र श्रीललितलालजी (जो बक्सरमें ही मार्केट सेक्रेटरीके उसके इस् आश्वासनसे मुझे बड़ी राहत हुई। पदपर स्थापित थे)-को घरकी चाभी देते हुए कहा कि Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma_| MADE WITH LOVE BY Avinash/Sharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sharma | WADE WITH LOVE BY Avinash/Sharma | WA

पढो, समझो और करो संख्या ६] ठहर नहीं सकता और मैं अब पटना (जहाँ मैं उस समय ईश्वरका ही चक्र चलने लगा। यहाँ मैं पहली घटनाका सचिवालयमें वरीय लेखा-पदाधिकारी के पदपर स्थापित ही उल्लेख कर रहा हूँ। इस पूरे ड्रामेके पीछे मेरे स्व॰ था) वापस जा रहा हूँ। मैंने उनसे यह भी कहा कि सहोदर छोटे भाईका भी भीतर-ही-भीतर हरिहरबाबुको लगभग तीन माह बाद मेरे पिताजी यहाँ आनेवाले हैं, पूर्ण सहयोग मिलता रहा था। इसकी भनक मेरी उन्हें यह चाभी दे दीजियेगा। माताजीको जब लगी तो उसका पता मुझे भी चल गया। जब मैं ललित बाबुको घरकी चाभी दे रहा था, कहना यह है कि कानूनी तरीकेसे उस मकानमें मेरे स्व॰ उनका चपरासी यह सब देख रहा था। वह जहाँ रहता भाईका हक नहीं बनता था, लेकिन वे उसमें हिस्सा था, उसके बगलमें ही किरायेके मकानमें एक अवकाश-चाहते थे। प्राप्त पुलिस आफीसर भी रहता था, जो किसी दूसरे मैं कहना तो नहीं चाहता था, लेकिन प्रसंगवश मकानकी फिराकमें था। बातों-बातोंमें उस चपरासीने कुछ उन बातोंका भी उल्लेख करना पड रहा है, जो एक स्वर्गीय आत्माके विरुद्ध है। पिताजीके जीवनकालमें यह बात उस पुलिस अधिकारीको बता दिया कि फिलहाल एक नया मकान (मेरा ही घर)तो खाली है, भी वे मेरे साथ कई ऐसी चालें चल चुके थे। मैं चुपचाप लेकिन मात्र तीन ही माहके लिये। जब उन्हें मेरे स्व० सहता चला आ रहा था। मैंने भी अपने मनमें तय कर पिताजीके प्रोग्रामकी पूरी जानकारी मिल गयी तो उन्होंने लिया था कि चाहे मुझे कितना भी नुकसान क्यों न हो, एक बड़ी भारी धूर्त चाल चल दी। उनके मनमें तो कोई मैं अपने भाईके साथ कोई मुकदमा नहीं लड़ँगा। इस बार भी जैसे ही उनके विचारका पता चला, मैंने तत्काल मकान गलत तरीकेसे दखल करनेका विचार बहुत पहलेसे था। उन्होंने उस चपरासीको सौ रुपयेका एक एक रजिस्ट्री पत्र उनके पास भेजा, जिसमें लिखा था नोट इनाममें देते हुए कहा कि मैं अपने गाँवमें एक कि—'कौन कहता है कि उस मकानमें तुम्हारा आधा मकान बनवा रहा हूँ और वह दो माहके अन्दर तैयार हिस्सा है ? पूरा-का-पूरा मकान तुम्हारा है। मैं अमुक हो जायगा और लाल साहबके पिताजी लगभग तीन तिथिको बक्सर आ रहा हूँ और उसी दिन तुम भी वहाँ माहमें यहाँ आनेवाले हैं। इस प्रकार उनके आनेके पहले आ जाओ, मैं अपने इस कथनका स्टाम्प पेपर भी उसी दिन रजिस्ट्रेशन करा दुँगा।' जब हरिहर बाबूको पता ही मैं मकान खाली कर दूँगा। उसके बाद जो हुआ, उसे याद करके ही रोंगटा चला तो वे अपना पलड़ा हलका समझने लगे। अब उस खड़ा हो जाता है। उस कहानीको विस्तारपूर्वक यहाँ प्रसंगमें जो बातें हुईं उसका उल्लेख मैं नहीं करना लिखना आवश्यक भी नहीं है। यानी नौ वर्षोंका लम्बा चाहता। मात्र इतना ही कह देना चाहता हूँ कि मेरा समय व्यतीत हो गया, किंतु मकान खाली नहीं हुआ। त्याग विचित्र रंग लाया। जो काम ९-१० वर्षींमें नहीं हरिहर बाबुका बडी-बडी राजनीतिक हस्तियोंसे अच्छा हो सका, वह मात्र एक माहमें हो गया। हम दोनों भाई मिलकर हरिहर बाबूको ऐसा नमक चटाये कि उन्हें सम्पर्क था। मर-मुकदमे भी बहुत हुए, लेकिन सब एकाएक रातोंरात मकान खालीकर वहाँसे अपने सामानके निरर्थक सिद्ध हुए। अब उन्होंने यह कहना प्रारम्भ किया कि बाघ अपनी माँद (निवास-स्थान) स्वयं नहीं बनाता साथ भागना पड़ा। दु:ख इसी बातका रहा कि तबतक है। मैं निराश हो गया था। हमारे पुज्य पिताजीका स्वर्गवास हो चुका था। लेकिन वर्ष १९८३ में एकाएक दो घटनाएँ एक इस घटनासे पाठकगण त्यागकी असीम शक्तिका ही साथ घटीं, जिनके चलते पासा ही पलट गया, मानो अनुमान भलीभाँति लगा सकते हैं।-आर० एन० लाल

मनन करने योग्य

माता-पिताकी सेवा ही परम धर्म है



एक ब्राह्मण बचपनमें घर छोड़कर साधु बन गया और उसने कठोर तपस्या की। तपके प्रभावसे उसे अद्भुत शक्ति प्राप्त हो गयी। एक बार वृक्षके नीचे अध्ययन कर रहे उसके शरीरपर एक पक्षीने विष्ठा कर दी। जब

उसने क्रुद्ध होकर पक्षीकी तरफ देखा तो उसके तपके प्रभावसे वह पक्षी जलकर भस्म हो गया। तपके अहंकारसे चूर वह तपस्वी एक गृहस्थके

यहाँ भिक्षा माँगनेके लिये गया। उस घरकी स्त्री अपने पतिकी सेवामें व्यस्त थी और साधुके बुलानेपर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। पतिसेवासे निवृत्त होनेपर वह भिक्षा लेकर साधुके पास आयी और भिक्षा लेनेका आग्रह करने लगी। देर होनेके कारण साधु उसपर

महाराज! क्या मुझे आपने वह पक्षी समझ लिया है, जिसे जलाकर आये हैं? यह सुनकर उस साधुको बड़ा

कृपित हो गया। इसपर वह पतिव्रता स्त्री बोली-

आश्चर्य हुआ और उसने इस बातके जाननेका रहस्य उस स्त्रीसे पूछा। उस स्त्रीने साधुको बताया कि इस विषयमें मिथिलापुरी-निवासी धर्मव्याध उन्हें समझायेगा।

तदनन्तर साधु उस धर्मव्याधकी दुकानपर गया, जहाँ

वह मांस-विक्रय कर रहा था।

धर्मव्याध साधु कौशिकको अपने घर ले गया। साधुने देखा कि वह धर्मव्याध जब घरमें आया तो माँ-बापकी

सेवामें तत्पर हो गया। साधुने उसकी आजीविकाके बारेमें जब उससे पूछा तो उस धर्मव्याधने कहा—मैं दूसरेके द्वारा

मारे गये जीवोंके मांसको बेचता हूँ। यह मेरी जीविकाका आधार है और मैं अपने अन्धे माँ-बापकी सेवा करता हूँ, जो मेरा सर्वोपरि कर्तव्य है। यह पूजा-पाठ, जप-तपसे

महान् कार्य है। भगवन्! ये माता-पिता ही मेरे प्रधान देवता हैं, जो कुछ देवताओं के लिये करना चाहिये, वह मैं इन्हीं दोनोंके लिये करता हूँ। मैं स्त्री और पुत्रोंके साथ प्रतिदिन

इन्हींकी शुश्रुषामें लगा रहता हूँ, इनकी सेवा ही मेरी तपस्या

है, इन्हींकी कृपासे मुझे दिव्यदृष्टि और धर्मका सारा रहस्य

मालूम है। इन्हींकी कृपासे पक्षीको भस्म कर देने तथा पतिव्रताद्वारा मेरे पास भेजने आदिका समाचार सब मुझे

पहले ही जात हो गया था। हे साधो! मेरा तो यही दृढ़ निश्चय है कि माता-पिता, गुरु तथा सभी बड़े जनोंकी प्रयत्नपूर्वक सेवा

करनी चाहिये। हे द्विजश्रेष्ठ! आपने अपने माता-पिताकी उपेक्षा की है, वेदाध्ययनके लिये आप उन

दोनोंकी आज्ञा लिये बिना घरसे निकल पडे, आपके द्वारा यह अनुचित कार्य हुआ है, आपके शोकसे वे

दोनों बूढ़े एवं तपस्वी माता-पिता अन्धे हो गये हैं। अब आप उन्हें प्रसन्न करनेके लिये घर जाइये और उनकी सेवा कीजिये। आप अपने माँ-बापको छोड़कर

साधु बन गये हैं और अपने कर्तव्यको भूल गये हैं। माँ-बापकी सेवा परम धर्म है। यही कारण है कि मैं

और वह पतिव्रता स्त्री पक्षीको जलानेकी घटनाका रहस्य समझ गये। साधुने जब उस धर्मव्याधकी बात सुनी तो उसे अपने कर्तव्यका ज्ञान हो गया।

—प्रो० श्रीमुखलालजी राय

संख्या ६] कल्याणका आगामी ९५वें वर्ष (सन् २०२१ ई०)-का विशेषाङ्क

कल्याणका आगामी ९५वें वर्ष (सन् २०२१ ई०)-का विशेषाङ्क

'श्रीगणेशपुराणाङ्क' [श्लोकाङ्क्रसहित सम्पूर्ण हिन्दी भाषानुवाद]

द्विरदाननं तं यः

धर्मार्थकामांस्तन्तेऽखिलानां तस्मै

'मैं उन भगवान् गजानन गणेशजीको प्रणाम करता हूँ, जो लोगोंके सम्पूर्ण विघ्नोंका हरण करते हैं, जो

सबके लिये धर्म, अर्थ और कामकी उपलब्धि कराते हैं, उन विघ्नविनाशकको नमस्कार है।'

शास्त्रोंमें भगवानुके सिच्चदानन्दमय पाँच मुख्य विग्रह माने गये हैं। ये सभी विग्रह अनादि, अनन्त एवं

परात्पर है; सभीके भिन्न-भिन्न लोक हैं, जो चिन्मय एवं शाश्वत हैं। सबके अलग-अलग स्वरूप हैं, अलग-

अलग शक्तियाँ हैं, आयुध हैं, वाहन हैं, पार्षद हैं, सेवक हैं, सेवाके विविध प्रकार हैं तथा उपासना एवं अर्चाकी

विविध पद्धतियाँ हैं। ये सभी स्वरूप पूर्ण हैं—लीलाक्रमसे ही उनमें परस्पर मुख्यता एवं गौणता दृष्टिगोचर होती

है। ये पाँच स्वरूप हैं—शिव, शक्ति, विष्णु, गणेश और सूर्य। इन पाँच देवोंकी एक साथ भी उपासना होती

है और पृथक्-पृथक् भी। पाँच भगवद्विग्रहोंमें-से भगवान् शिवसे सम्बन्धित 'श्रीशिवमहापुराण', शक्तिसे

सम्बन्धित 'श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण' तथा भगवान् विष्णुसे सम्बन्धित 'श्रीविष्णुपुराण' का प्रकाशन गीताप्रेसद्वारा

कल्याणके विशेषांकोंके रूपमें हो चुका है। भगवान् विष्णुके ही अवतार श्रीराम और श्रीकृष्णसे सम्बन्धित

'मानसाङ्क', 'वाल्मीकीय रामायण' और 'भागवतांक' का प्रकाशन भी कल्याणके विशेषाङ्कोंके रूपमें हो चुका

है। भगवान् गणेश प्रथम पूज्य हैं, परंतु इनकी अर्चनासे सम्बन्धित किसी विशेष ग्रन्थका गीताप्रेससे प्रकाशन

नहीं हो सका था। इस सन्दर्भमें देशके विभिन्न प्रान्तोंके सन्तों, आचार्यों और गणपित भक्तोंके पत्र आते रहे,

अत: यह निर्णय लिया गया कि कल्याणका आगामी ९५वें वर्ष (सन् २०२१)-का विशेषाङ्क 'श्रीगणेशपुराणाङ्क'

के रूपमें प्रकाशित किया जाय, जिससे इस महती कमीकी पूर्ति की जा सके।

'श्रीगणेशपुराण' गणपति-उपासनाका प्रतिनिधि ग्रन्थ है। यह पुराण उपासनाखण्ड और क्रीडाखण्ड नामक दो खण्डोंसे समन्वित है। प्रथम—उपासनाखण्डमें ९२ अध्याय और ४१२१ श्लोक हैं तथा द्वितीय—

क्रीडाखण्डमें ११५ अध्याय और ७०६८ श्लोक हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण पुराण १११८९ श्लोकोंमें निबद्ध है।

गणेशपुराणकी गणना उपपुराणोंमें प्रथम उपपुराणके रूपमें होती है। यद्यपि इस पुराणकी गणना उपपुराणोंमें

होती है, परंतु गणपित भक्त इसे 'गणेश-भागवत' कहकर भागवतमहापुराण-सदृश आदर देते हैं। जैसे

महाभारतमें विष्णुसहस्रनाम और श्रीमद्भगवद्गीता सन्निहित है, वैसे ही इसके उपासनाखण्डमें गणपितसहस्रनामस्तोत्र

और क्रीडाखण्डमें 'गणेशगीता' सन्निहित है, जिसे स्वयं भगवान् गणेशने राजा वरेण्यको सुनायी थी।

उपासनाखण्डमें गणेशजीकी उपासनासे सम्बन्धित गणेशचतुर्थी, संकष्टचतुर्थी, अङ्गारकचतुर्थी, वरदचतुर्थी आदि

व्रतोंकी कथाएँ और उनका विधान वर्णित है। गणेशपूजनमें दुर्वा-समर्पणका महत्त्व तथा भाद्रशुक्ल चतुर्थीको

चन्द्र-दर्शनके निषेधकी कथाएँ भी इसमें समाहित हैं। भगवान् शिवका पार्थिव-पूजन प्रसिद्ध है, उसी प्रकार

िभाग ९४

गणेशजीकी भी एकसे लेकर १०८ पार्थिव प्रतिमाओंके पुजनका विधान और फल भी वर्णित है। इस खण्डमें

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पार्वती, स्कन्द, चन्द्रमा, मंगलग्रह, कश्यप, परशुराम, शेषनाग, कामदेव, महर्षि व्यास,

भ्रुशुण्डी, मुदुगल, राजा कर्दम, नल, चन्द्रांगद, शुरसेन, वरेण्य, दक्ष, बल्लाल आदि देवताओं, ऋषि-मुनियों, राजाओं और गणेश-भक्तोंद्वारा की गयी उनकी उपासनाकी कथाएँ भी सिम्मिलित हैं।

क्रीडाखण्डमें भगवान् गणेशकी बाल-लीलाओंका वर्णन है। उन परमात्मप्रभुके महोत्कट विनायक, मयूरेश्वर और गजानन अवतारों तथा कलियुगमें होनेवाले धूम्रकेतु अवतारका इस खण्डमें वर्णन है। इन अवतारोंमें उनके द्वारा नरान्तक, देवान्तक, गृधासुर, क्रूरासुर, व्योमासुर, शतमाहिषा, वृकासुर, कमलासुर, सिन्धु और

सिन्दुरासुर आदि अनेक असुरोंका उद्धार हुआ। उनकी कथाएँ इस खण्डमें वर्णित हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण पुराण रोचक एवं भक्तिपरक लीलाकथाओंसे परिपूर्ण है।

इस पुराणका सर्वप्रथम कथन ब्रह्माजीने भृगुमुनिसे किया था, भृगुमुनिने इस पुराणको कृपापूर्वक राजा सोमकान्तको सुनाया। इस प्रकार इस पुण्यप्रद गणेशपुराणका पृथ्वीपर प्रचलन हुआ। यद्यपि इस पुराणके आदि,

मध्य और अन्तमें—सर्वत्र श्रीगणेशतत्त्वका ही प्रतिपादन हुआ है, परंतु यह पुराण शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर और गाणपत्य—सभीके लिये पठनीय है; क्योंकि भगवान् गणेश तो प्रथम पुज्य हैं और किसी भी देवी-देवताके पूजनसे

पहले उनका पूजन अनिवार्य है। इस सम्बन्धमें भगवान् शिवका कथन है-शैवैस्त्वदीयैरथ वैष्णवैश्च शाक्तैश्च सौरैरथ

शुभाशुभे वैदिकलौिकके वा त्वमर्चनीयः प्रथमं प्रयत्नात्।

[गणेशपु० १।४५।१०-११] अर्थात् हे ईश! शैव, आपके भक्त (गणेश-उपासक), वैष्णव, शाक्त और सूर्योपासक—सभीके

सम्पूर्ण कार्योंमें, चाहे वे वैदिक हों या लौकिक, शुभ हों या अशुभ—सभी कार्योंमें आप ही प्रयत्नपूर्वक प्रथम पुजनीय हैं।

इस पुराणकी महिमाके विषयमें कहा गया है कि जो व्यक्ति इस श्रेष्ठ गणेशपुराणका श्रवण करता

है, वह सभी आपत्तियोंसे मुक्त होकर अनेक भोगोंका उपभोग करके, पुत्र-पौत्रादिसे सम्पन्न होकर ज्ञान-विज्ञानसे समन्वित हो जाता है और गणेशजीकी कृपासे उत्तम मुक्ति प्राप्त करता है। सैकड़ों करोड़ कल्प

बीत जानेपर भी उसका [इस संसारमें] पुनरागमन नहीं होता। शृणुयाद् यो गणेशस्य पुराणमिदमुत्तमम् । स सर्वामापदं हित्वा भुक्त्वा भोगाननेकशः॥

ज्ञानविज्ञानसंयुतः । लभते परमां मुक्तिं गणेशस्य प्रसादतः ॥

तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरि। [गणेशपु० १।९२।५७—५८१/२]

इस विशेषाङ्कर्में केवल श्रीगणेशपुराणका भाषानुवाद ही श्लोकसंख्याके साथ दिया जायगा, अत: लेखक महानुभावोंसे सादर अनुरोध है कि वे इस विशेषाङ्कमें प्रकाशनार्थ लेख भेजनेका कष्ट न करें, परंतु

गणेशपुराणसम्बन्धी कोई विशिष्ट लेख हो तो उसे आगे साधारण अङ्कोंमें देनेका विचार किया जा सकता है। विनीत—

राधेश्याम खेमका

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY AVITESTI/Sh

पाठकोंसे निवेदन

आजकल भारतीय टेलीविजनपर हमारे धार्मिक ग्रन्थोंमें वर्णित देवी-देवताओंके चरित्रोंके आधारपर जो रामायण, महाभारत, विष्णुपुराण, श्रीकृष्ण, जय हनुमान्, देवोंके देव महादेव, जय गणेश आदि धारावाहिक दिखाये जा रहे हैं उनसे सम्बन्धित प्रामाणिक मूल ग्रन्थ गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित हैं।

हम सबका दायित्व है कि भावी पीढ़ियोंको देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों और भक्तोंके सम्बन्धमें प्रामाणिक जानकारीके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित मूल ग्रन्थों एवं सत्साहित्यको पढ़नेके लिये प्रेरित करें।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (कोड 75, 76) ग्रन्थाकार—प्रस्तुत ग्रन्थमें भगवान्के लोकपावन चरित्रकी सर्वप्रथम वाङ्मयी परिक्रमा है। मूलके साथ सरस हिन्दी अनुवादमें दो खण्डोंमें उपलब्ध, सचित्र, सजिल्द। मूल्य ₹ 600 (कोड 1557, 1622,1745) तेलुगु, (कोड 1964, 1965,1969) कन्नड़,(1939, 1940) गुजराती, (कोड 2034, 2195) बँगला, (कोड 1902, 1903, 1904, 1905, 1906) तिमलमें भी उपलब्ध।

अध्यात्मरामायण (कोड 74) ग्रन्थाकार—यह परम पिवत्र गाथा भगवान् शङ्करद्वारा आदिशक्ति जगदम्बा पार्वतीजीको सुनायी गयी थी। इसमें भिक्त, ज्ञान एवं अध्यात्म–तत्त्वके विवेचनकी प्रधानता है। मूल्य ₹ 110 (कोड 1508) मराठी, (कोड 1256) तिमल, (कोड 1558) कन्नड़ एवं (कोड 845) तेलुगुमें भी उपलब्ध।

श्रीरामचरितमानस (कोड 81)—गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजके द्वारा प्रणीत श्रीरामचरितमानस हिन्दी साहित्यकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसके बृहदाकार, ग्रन्थाकार, मझला आकार, गुटका आकार और अलग-अलग काण्डके रूपमें विभिन्न भाषाओंमें सटीक एवं मूल अनेक संस्करण प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य ₹ 300

कृतिवासी रामायण [ग्रन्थाकार, बँगला] (कोड 1839)— बंग-भाषाके आदि किव संत कृत्तिवास प्रणीत इस ग्रन्थमें भगवान् नारायणके चार अंशोंका मनोरम चित्रण किया गया है। भगवान् रामके द्वारा की गयी शक्तिपूजाका सर्वप्रथम वर्णन कृतिवास रामायणमें मिलता है। प्रस्तुत ग्रन्थमें मध्यकालीन बंगाली समाज और संस्कृतिका विविध चित्रण बहुत ही सुन्दर, सरस और सरल शब्दोंमें किया गया है। मूल्य ₹ 180

महाभारत [सटीक] (कोड 728) ग्रन्थाकार — छ: खण्डोंमें सेट — महाभारत भारतीय संस्कृतिका, आर्य सनातन – धर्मका अद्भुत महाग्रन्थ है। इसे 'पंचम वेद' भी कहा जाता है। यह महाग्रन्थ अनन्त गूढ़, गुह्य रत्नोंका भण्डार है। मूल्य ₹ 2250 (कोड 39, 511) केवल भाषा (कोड 2141, 2142, 2143, 2144, 2145, 2146, 2147) तेलुगुमें भी उपलब्ध।

श्रीविष्णुपुराण [सानुवाद] (कोड 48) ग्रन्थाकार — श्रीपराशर ऋषि-प्रणीत इस ग्रन्थमें सम्पूर्ण धर्म एवं देविष तथा राजिषयोंके चिरत्रका विशद वर्णन है। मूल्य ₹ 150 (कोड 1364) केवल हिन्दी अनुवादमें मूल्य ₹ 120, (कोड 2040) बँगला, (कोड 2006) गुजराती, (कोड 2196) तिमलमें भी उपलब्ध।

संक्षिप्त शिवपुराण [मोटा टाइप] (कोड 789) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म शिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त पूजा-पद्धित, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन किया गया है। मूल्य ₹ 250, विशिष्ट संस्करण (कोड 1468) मूल्य ₹ 300, (कोड 2020) मूलमात्रम् मूल्य ₹ 275 (कोड 2223, 2224) सटीक। मूल्य ₹ 650 एवं (कोड 1286) गुजराती, (कोड 1937) बँगला, (कोड 1926) कन्नड़, (कोड 975) तेलुगु, (कोड 2043) तिमलमें भी उपलब्ध।

श्रीगणेश-अङ्क (कोड 657) ग्रन्थाकार—प्रस्तुत अङ्कमें श्रीगणेशकी लीला-कथाओंका भी बड़ा ही रोचक वर्णन और पुजा-अर्चना आदिपर उपयोगी दिग्दर्शन है। मुल्य ₹ 180

श्रीहनुमान-अङ्क (कोड 42) ग्रन्थाकार—इस अङ्कमें श्रीहनुमान्जीको प्रसन्न करनेवाले विविध स्तोत्र, ध्यान एवं पूजन-विधियोंका भी संकलन है। मूल्य ₹ 150



LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

श्रीगर्गसंहिता-सटीक [कोड 2260]—श्रीकृष्णके कुलगुरु महर्षि गर्गद्वारा रचित इस संहिताकी कथाएँ समस्त वैष्णव-परम्परामें सर्वाधिक प्रामाणिक मानी जाती हैं। यह सारी संहिता अत्यन्त मधुर श्रीकृष्णलीलासे परिपूर्ण है। श्रीराधाकी दिव्य माधुर्यभाविमश्रित लीलाओंका इसमें विशद वर्णन है। इसमें गोलोक, वृन्दावन, गिरिराज, माधुर्य, मथुरा, द्वारका, विश्वजित, बलभद्र, विज्ञान एवं अश्वमेधसहित कुल 10 खण्ड हैं। गर्गसंहितामें और भी बहुत-सी ऐसी नयी-नयी कथाएँ हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। श्रीकृष्णभक्तोंके लिये यह ग्रंथ संग्रहणीय है। इस ग्रन्थको मुल श्लोकोंके साथ प्रकाशित किया गया है। मुल्य ₹ 350

योग एवं आरोग्यपर तीन प्रमुख प्रकाशन—अब उपलब्ध

पातञ्जलयोग-प्रदीप (कोड 47) ग्रन्थाकार—श्रद्धेय श्रीओमानन्द महाराजद्वारा प्रणीत इस ग्रन्थमें पातञ्जलयोग-सूत्रोंको व्याख्या तत्त्ववैशारदी, भोजवृत्ति तथा योगवार्तिकके अनुसार विस्तृत रूपसे की गयी है। इसमें उपनिषदों तथा भारतीय दर्शनोंके विभिन्न तत्त्वोंकी सुन्दर समालोचना है। मुल्य ₹ 200

योगाङ्क (कोड 616) ग्रन्थाकार—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक योगिसद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चिरित्रका वर्णन है। मृल्य ₹ 280

आरोग्य-अङ्क [संवर्धित संस्करण] (कोड 1592) ग्रन्थाकार—विभिन्न चिकित्सा-पद्धितयों, घरेलू औषिधयों तथा स्वास्थ्यरक्षापर संगृहीत अनेक उपयोगी लेखोंका संग्रह है। मूल्य ₹ 260

पाठकोंके लिये आवश्यक सूचना

- 1. 'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अत: केवल कल्याणके लिये कल्याण विभागको एवं पुस्तकोंके लिये पुस्तक-बिक्री-विभागको पत्र तथा मनीऑर्डर आदि अलग-अलग भेजना चाहिये। पुस्तकोंके ऑर्डर, डिस्पैच अथवा मूल्य आदिकी जानकारीके लिये पुस्तक प्रचार-विभागके फोन (0551) 2331250, 2331251, 2334721 नम्बरोंपर सम्पर्क करें।
- 2. कल्याणके पाठकोंकी सुविधाके लिये कल्याण-कार्यालयमें दो फोन 09235400242/09235400244 उपलब्ध हैं। इन नम्बरोंपर प्रत्येक कार्य-दिवसमें दिनमें 9:30 बजेसे 5.30 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं अथवा kalyan@gitapress.org पर e-mail भेज सकते हैं। इसके अतिरिक्त नं०9648916010 पर SMS एवं WhatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।
- 3. पत्रमें अपना मोबाइल नम्बर तथा ग्राहकसंख्या अवश्य लिखें जिससे आपकी समस्याका निस्तारण शीघ्र किया जा सके।
- booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
- gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005 book.gitapress.org gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ सकते हैं।